ज्ञानावरणीय कर्म

दर्शनावरणीय कर्म

वेदनीय कर्म

तीसरा कर्मग्रन्थ

मोहनीय कर्म

-: विवेचनकार-संपादक :-

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

आयुष्य कर्म

अंतराय कर्म

गोत्र कर्म

नाम कर्म

आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी विरचित

तीसरा-कर्मग्रन्थ

हिन्दी संपादक

परम शासन प्रभावक, महाराष्ट्र देशोद्धारक

स्व. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के

शिष्यरत्न अध्यात्मयोगी, निःस्पृह शिरोमणि भावाचार्य तुल्य

पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य

के चरम शिष्यरत्न प्रभावक प्रवचनकार एवं

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न **पूज्य आचार्य देव**

श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

243

卐 **प्रकाशन** 卐

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor,

बे.व्यु. बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,

कालबादेवी, मुंबई-400 002.

Cell 8484848451 (only whatsapp)

हिन्दी आवृत्ति : तृतीय • **मूल्य :** 110/- रुपये • **प्रतियाँ :** 1000
दि. 5-6-2024 • **विमोचन स्थल :** आराधना भवन-वीरवाडा (राज.)
. • **Website :** Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

• आप जैन धर्म के रहस्य, जैन इतिहास, जैन तत्त्वज्ञान, जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप **दिव्य संदेश प्रकाशन** मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 7 पुस्तकें दी जाएंगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तकें एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोड़कर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल, चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं., 4403, लोटन जाट गली, पहाड़ी धीरज, सदर बाजार, दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार, मुंबई-400 002.M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से...

विपूल हिन्दी साहित्य सर्जक, **मरुधर रत्न पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा.** द्वारा आलेखित-संपादित **'तीसरा कर्मग्रन्थ'** के हिन्दी विवेचन की तीसरी आवृत्ति प्रकाशित करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ में वर्तमान काल में साधु-साध्वी एवं मुमुक्षुजन के प्राथमिक पाठ्यक्रम के रुप में पंच प्रतिक्रमण, नव स्मरण, चार प्रकरण, तीन भाष्य और छह कर्मग्रंथों का अभ्यास किया जाता है ।

चार प्रकरण आदि सूत्रों के कंठस्थ करने के बाद उसका अर्थ बोध भी जरुरी है ।

गुजराती भाषा में इन सभी पर विस्तृत व संक्षिप्त विवेचन भी उपलब्ध है, परंतु हिन्दी भाषा में इस प्रकार के विवेचनात्मक साहित्य की बहुत बडी कमी रही है । इस कमी की पूर्ति के लिए **मरुभूमि के रत्न पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरिजी म.सा.** अपने संयम जीवन के प्रारंभिकाल से ही प्रयत्नशील है ।

उन्होंने अत्यंत ही सरल-सुबोध और रोचक शैली में पंच प्रतिक्रमण, जीव-विचार, नव तत्त्व, दंडक, लघु संग्रहणी, तीन भाष्य तथा छह कर्म–ग्रंथों पर हिन्दी भाषा में विवेचन तैयार किया है ।

जैन धर्म के प्रारंभिक पाठ्यक्रम के रुप में प्रकाशित साहित्य दक्षिण भारत में खूब व उपकारक बना है ।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास हैं कि यह प्रकाशन पाठकों के लिए अति उपयोगी सिद्ध होगा !

-: निवेदक :-

दिव्य संदेश प्रकाशन ट्रस्ट मंडल

विवेचनकार और संपादक की कलम से

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, अनंत करुणा के स्वामी, जगत्-उद्धारक, तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने केवलज्ञान अर्थात् आत्म प्रत्यक्ष पूर्ण ज्ञान के बल से जगत् के यथार्थ स्वरूप को प्रत्यक्ष जानकर आत्म-हितैषी आत्माओं के कल्याण के लिए उसका यथार्थ प्ररुपण भी करते हैं ।

जगत् के जीवों को भ्रमित करानेवाले मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय हो जाने के कारण वे तारक परमात्मा वीतराग कहलाते है, अतः उन्हें असत्य बोलने का कोई प्रयोजन नहीं रहता हैं ।

सामान्यतया व्यक्ति दो कारणों से झूठ बोलता हैं–

1) अज्ञानता के कारण 2) मोह के कारण ।

जिस वस्तु का पूर्ण ज्ञान नहीं हो और उस वस्तु के संदर्भ में कोई अपना अभिप्राय देगा तो उसमें असत्य कथन की पूरी पूरी संभावना रहती है ।

किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान है, परंतु मन में राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, मोह, लोभ या लालच हो तो व्यक्ति झूठ बोल सकता है ।

तारक परमात्मा दीक्षा अंगीकार करने के बाद जब तक वीतराग और सर्वज्ञ नहीं बनते है, तब तक धर्म का उपदेश नहीं देते हैं, अतः इन दोनों कारणों के अभाव में वीतराग-सर्वज्ञ को कहीं असत्य भाषण का नाम मात्र का भी प्रयोजन नहीं होने से उनके द्वारा निरुपित पदार्थों में शंका को स्थान नहीं रहता है ।

परमात्मा ने अपने ज्ञान के बल से देखकर आत्मा के संदर्भ में सुंदर निरुपण किया है । यद्यपि आत्मा अतीन्द्रिय पदार्थ है, फिर भी उसके यथार्थ स्वरुप को जानकर आत्मा के षट्स्थान बताए है–

1) आत्मा है ।

2) आत्मा परिणामी नित्य है अर्थात् आत्मा अन्य अन्य पर्यायों को ग्रहण करते हुए भी मूल द्रव्य से नित्य है ।

3) अरुपी ऐसी **आत्मा भी कर्म की कर्ता है ।** ज्ञानावरणीय आदि शुभ अशुभ कर्मों को बांधने का काम भी आत्मा स्वयं ही करती है ।

4) आत्मा कर्म फल की भोक्ता हैं– अर्थात् आत्मा ने अपने शुभ-अशुभ अध्यवसायों द्वारा जिन कर्मों का बंध किया है उन कर्मों का फल भी वह स्वयं ही भोगती है ।

5) आत्मा का मोक्ष है– यद्यपि प्रवाह की अपेक्षा आत्मा अनादिकाल से कर्म से बद्ध है, फिर भी वह अपने प्रयत्न द्वारा कर्मों के बंधन से सर्वथा मुक्त हो सकती है ।

6) मोक्ष का उपाय है– कर्म के जटिल बंधनों से मुक्त होने के लिए जगत् में सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चारित्र रुप मोक्ष मार्ग भी है, जिस मार्ग का अनुसरण कर आज तक अनंत आत्माओं ने शाश्वत-अजरामर मोक्ष पद प्राप्त किया है ।

'आत्मा कर्म की कर्ता है और कर्म फल की भोक्ता हैं' आत्मा के इस स्वरूप के संदर्भ में ही प्रभु ने संपूर्ण **'कर्म विज्ञान'** का निरुपण किया है ।

'आत्मा स्वयं ही कर्म बांधती है और उसका फल भोगती हैं' इस बात को अकाट्य तर्कों द्वारा सिद्ध किया गया हैं, इस सत्य को समझ लेने के बाद **'जगत् कर्ता'** ईश्वर है और ईश्वर ही जीवात्मा को स्वर्ग, नरक, सुख-दु:ख आदि देता है–**'की मिथ्या मान्यता में से व्यक्ति मुक्त हो जाता है ।**

भगवान महावीर के द्वितीय शिष्य **अग्निभूति** के अन्तर्मन में दीक्षा के पूर्व **कर्म हैं या नहीं ?** के संदर्भ में शंकाएं थी-परंतु महावीर प्रभु ने उसका युक्तिपूर्वक समाधान कर जगत् के सामने **'कर्म विज्ञान'** को प्रकाशित किया था । उसके बाद **वायुभूति** आदि के दिल में भी **'जगत् की समुचित व्यवस्था कैसे चल रही है ?'** के संदर्भ में जो भिन्न भिन्न शंकाएं थी-उसका बहुत ही सुंदर समाधान प्रभुवीर ने किया था– उनका यह वार्तालाप आज भी **'गणधरवाद'** के रुप में खूब प्रसिद्ध है ।

यह **गणधरवाद– 'विशेषावश्यक भाष्य'** ग्रंथ में प्राकृत-संस्कृत भाषा में आज भी विद्यमान हैं ।

जिनागमों के आधार पर ही भूतकाल में अनेक आचार्य भगवंतों ने विपूल प्रमाण में **'कर्म साहित्य'** का सर्जन किया है ।

यद्यपि अग्नि-जल-भूकंप आदि अनेक प्राकृतिक आपदाओं के कारण काफी साहित्य नष्ट हो चूका हैं, फिर भी जो बचा है वह भी खूब उपयोगी व महत्त्वपूर्ण हैं ।

वर्तमान में उपलब्ध कर्म साहित्य में प्राकृत भाषा में कम्मपयडी और पंचसंग्रह मुख्य है ।

कम्मपयडी में 475 गाथाएं हैं, जो दूसरे पूर्व में से संग्रहित हैं तो पंच संग्रह में 1000 गाथाएं है, जिसमें योग, उपयोग, कर्मबंध, बंध हेतु, उदय, उदिरणा, सत्ता, बंध आदि आठ करण आदि का सुंदर विवेचन है ।

वर्तमान में प्राचीन और अर्वाचीन छह कर्मग्रंथ मिलते है प्राचीन छह कर्मग्रंथों के आधार पर ही **पू.आ. श्री देवेन्द्रसूरिजी म.** ने पांच कर्मग्रंथों की रचना की है, इनके नाम कमशः कर्म विपाक, कर्मस्तव, बंध-स्वामित्व, षडशीति और शतक हैं । पहले तीन ग्रंथों का नाम अपने विषय के अनुरुप और चौथे-पांचवे कर्मग्रंथ का नाम उनमें निर्दिष्ट गाथा की संख्या के अनुसार है ।

तीसरा कर्मग्रंथः– तीसरे कर्मग्रंथ में 14 मार्गणाओं के गति आदि उत्तर भेद के आधार पर गुणस्थानकों को लेकर बंध-स्वामित्व का कथन किया गया हैं । किस-किस मार्गणा में कितने गुणस्थानक संभव है, उन मार्गणावर्ती जीवों में सामान्य से तथा गुणस्थानकों के विभागानुसार कर्म बंध की योग्यताओं का वर्णन किया हैं ।

इन कर्मग्रंथों पर उपलब्ध संस्कृत टीकाओं के आधार पर आज तक गुजराती में महेसाणा पाठशाला की ओर से तथा अन्य भी विद्वान् पंडितों के विवेचन प्रकाशित हुए है । हिन्दी भाषा में इस प्रकार के विवेचन नहींवत् उपलब्ध है ।

तीसरे कर्मग्रंथ का विवेचन पहली दो आवृत्तियों में दूसरे कर्मग्रंथ के साथ में था, इस आवृत्ति में स्वतंत्र पुस्तक के रुप में प्रकाशित किया है ।

दूसरे व तीसरे कर्मग्रंथ की नई आवृत्ति में सभी कोष्ठक **पू.आ. वीरशेखरसूरिजी म.सा.** की गुजराती पुस्तक में से लिये हैं, हम उनके खूब आभारी है ।

वर्षों पूर्व हिन्दी भाषा में स्थानकवासी संप्रदाय के मुनिश्री मिश्रीमलजी द्वारा विवेचित **तीसरे कर्मग्रन्थ** को भी ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत विवेचन तैयार किया है । छद्मस्थतावश जाने-अनजाने में कहीं स्खल्लनाएं रह गई हो तो त्रिविध-त्रिविध मिच्छा मि दुक्कडम् ।

आराधना भवन
कैलाशनगर,
जिला-सिरोही (राज.)

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी पादपद्मरेणु
रत्नसेनसूरि

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
1.	वात्सल्य के महासागर	2038	अध्यात्मयोगी पू. गुरुदेव का जीवन परिचय	बाली
2.	सामायिक सूत्र विवेचना	2039	सामायिक सूत्रों का विवेचन	
3.	चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	2040	चैत्यवंदन के सूत्रों का विवेचन	
4.	आलोचना सूत्र विवेचना	2040	इच्छामिठामि आदि सूत्रों का विवेचन	
5.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचन	2041	वंदित्तु सूत्र पर विस्तृत विवेचन	
6.	कर्मन् की गत न्यारी	2041	महाबल-मलयासुंदरी का चरित्र	पूना
7.	आनंदघन चौबीसी विवेचन	2041	पू.आनंदघनजी के 24 स्तवनों का विवेचन	विजयापूर
8.	मानवता तब महक उठेगी	2041	मार्गानुसारिता के 18 गुणों का विवेचन	
9.	मानवता के दीप जलाएं	2043	मार्गानुसारिता के 17 गुणों का विवेचन	
10.	जिंदगी जिंदादिली का नाम है	2044	पू.पादलिप्तसूरिजी आदि चरित्र	कैलाश नगर राज.
11.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	2044	'चेतन ज्ञान अजुवालिए' पर विवेचन	रानीगांव
12.	युवानो ! जागो	2045	धुम्रपान आदि पर विवेचन	रानीगांव
13.	शांत सुधारस-विवेचन भाग 1	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
14.	शांत सुधारस- विवेचन भाग 2	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
15.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	2045	लेखों का संग्रह	जयपुर
16.	मृत्यु की मंगल यात्रा	2046	'मृत्यु' विषयक पत्रों का संग्रह	सेवाडी
17.	जीवन की मंगल यात्रा	2046	जीवन की सफलता के उपाय	पिंडवाडा
18.	महाभारत और हमारी संस्कृति-1	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	जयपुर
19.	महाभारत और हमारी संस्कृति-2	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	पिंडवाडा
20.	तब चमक उठेगी युवा पीढी	2047	नव युवकों को मार्गदर्शन	पिंडवाडा
21.	The Light of Humanity	2047	मार्गानुसारिता के गुणों का वर्णन	उदयपुर
22.	अंखियाँ प्रभु दर्शन की प्यासी	2047	पू.यशो.वि. की चौबीसी पर विवेचन	शंखेश्वर
23.	युवा चेतना विशेषांक	2047	व्यसनादि पर लेखों का संग्रह	उदयपुर
24.	तब आंसू भी मोती बन जाते है	2047	सागरदत्त चरित्र	उदयपुर
25.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	2047	गुजराती वार्ताओं का संग्रह	
26.	युवा संदेश	2048	नवयुवकों को शुभ संदेश	पाटण
27.	रामायण में संस्कृति भाग 1	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	राजकोट

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
28.	रामायण में संस्कृति-भाग 2	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	जामनगर
29.	जीवन निर्माण विशेषांक	2049	सद्गुणोपासना संबंधी लेख	जामनगर
30.	श्रावक जीवन दर्शन	2049	श्राद्धविधि ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद	गिरधरनगर
31.	The Message for the youth	2049	युवा संदेश का अंग्रेजी अनुवाद	गिरधरनगर
32.	यौवन सुरक्षा विशेषांक	2049	ब्रह्मचर्य विषयक लेखों का संग्रह	गिरधरनगर
33.	आनंद की शोध	2050	5 जाहिर प्रवचन	गिरधरनगर
34.	आग और पानी भाग-1	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
35.	आग और पानी भाग-2	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
36.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	2068	शत्रुंजय महिमा एवं यात्रा विधि	पालीताणा
37.	सवाल आपके, जवाब हमारे	2050	जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरी	माटुंगा
38.	जैन विज्ञान	2050	नव तत्व के पदार्थों पर विवेचन	थाणा
39.	आहार विज्ञान विशेषांक	2050	जैन आहार पद्धति	थाणा
40.	How to live true life ?	2050	जीवन की मंगल यात्रा का अनुवाद	थाणा
41.	भक्ति से मुक्ति	2050	प्रभु भक्ति के स्तवन आदि	थाणा
42.	आओ ! प्रतिक्रमण करे	2051	राई व देवसी आदि प्रतिक्रमण	थाणा
43.	प्रिय कहानियाँ	2051	कहानियों का संग्रह	मुलुंड
44.	अध्यात्म योगी पूज्य गुरुदेव	2051	पं. श्री के जीवन विषयक लेख	भायखला
45.	आओ ! श्रावक बने	2051	श्रावक के 12 व्रतों का निर्देश	कल्याण
46.	गौतम स्वामी-जंबुस्वामी	2051	महापुरुषों का विस्तृत जीवन	कल्याण
47.	जैनाचार विशेषांक	2051	जैन आचार विषयक लेख	कल्याण
48.	हंसश्राद्धव्रत दीपिका (गु.)	2051	श्रावक के 12 व्रत	कल्याण
49.	कर्म को नहीं शर्म	2052	भीमसेन चरित्र	वुर्ला
50.	मनोहर कहानियाँ	2052	प्रेरणादायी 90 कहानियाँ	वुर्ला
51.	मृत्यु-महोत्सव	2052	मृत्यु पर विवेचन	दादर
52.	नवलाख नवकार	2052	नवकार	
53.	सफलता की सीढियाँ	2052	श्रावक के 21 गुणों पर विवेचन	दादर
54.	श्रमणाचार विशेषांक	2052	साधु जीवनचर्या विषयक	
55.	विविध देववंदन	2052	दीपावली आदि देववंदन	भायंदर
56.	नवपद-प्रवचन	2052	नवपद के प्रवचन	चीराबाजार
57.	ऐतिहासिक कहानियाँ	2052	भरत आदि 19 महापुरुष	सायन
58.	तेजस्वी सितारे	2053	स्थूलभद्र आदि छ महापुरुष	सायन
59.	सन्नारी विशेषांक	2053	सन्नारी विषयक लेख संग्रह	सायन

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
60.	मिच्छामि दुक्कडम्	2053	क्षमापना पर उपदेश	सायन
61.	Panch Pratikraman Sootra	2053	पंच प्रतिक्रमण मूल सूत्र	सायन
62.	जीवन ने जीवी तूं जाण (गुज.)	2053	श्रद्धांजलि लेखों का संग्रह	सायन
63.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	2053	विविध वार्ताओं का संग्रह	सायन
64.	अमृत की बुंदे	2054	प्रेरणादायी उपदेश	बांद्रा (ई)
65.	श्रीपाल-मयणा	2054	श्रीपाल और मयणा सुंदरी	थाणा
66.	शंका और समाधान-भाग-1	2054	1200 प्रश्नों के जवाब	थाणा
67.	प्रवचन धारा	2054	पांच जाहिर प्रवचन	धूले
68.	राजस्थान तीर्थ विशेषांक	2054	राजस्थान के तीर्थ	धूले
69.	क्षमापना	2054	क्षमापना संबंधी चिंतन	धूले
70.	भगवान महावीर	2054	महावीर प्रभु के 27 भव	धूले
71.	आओ ! पौषध करें	2055	पौषध की विधि	चिंचवड
72.	प्रवचन मोती	2054	उपदेशात्मक वचन	चिंचवड
73.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	2055	चैत्यवंदन-स्तुति संग्रह	चिंचवड
74.	श्रावक कर्तव्य भाग 1	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
75.	श्रावक कर्तव्य भाग 2	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
76.	कर्म नचाए नाच	2056	महासती तरंगवती चरित्र	सोलापूर
77.	माता-पिता	2056	संतानों के कर्तव्य	सोलापूर
78.	प्रवचन-रत्न	2056	प्रवचनों का आंशिक अवतरण	पूना
79.	आओ ! तत्वज्ञान सीखे !	2056	जैन तत्वज्ञान के रहस्य	चिंचवड स्टे.
80.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	2056	क्रोध के कटु परिणाम	चिंचवड स्टे.
81.	जिन शासन के ज्योतिर्धर	2057	प्रभावक महापुरुष	चिंचवड गांव
82.	आहार क्यों और कैसे ?	2057	आहार संबंधी जानकारी	दहीसर
83.	महावीर प्रभु का सचित्र जीवन	2057	सचित्र संपूर्ण जीवन	थाणा
84.	प्रभु पूजन सुख संपदा	2057	प्रभु दर्शन पूजन विधि	भिवंडी
85.	भाव श्रावक	2057	भाव श्रावक के 17 गुणों पर विवेचन	भायंदर
86.	महान् ज्योतिर्धर	2057	रामचंद्रसूरीश्वरजी का जीवन	भायंदर
87.	संतोषी नर सदा सुखी	2058	लोभ के कटु परिणाम	गोरेगांव
88.	आओ ! पूजा पढाए !	2058	चोसठ प्रकारी पूजाओं के अर्थ	गोरेगांव
89.	शत्रुंजय की गौरव गाथा	2058	शत्रुंजय के 16 उद्धार	भायंदर
90.	चिंतन मोती	2058	विविध चिंतनों का संग्रह	टिंबर मार्केट-पूना
91.	प्रेरक कहानियाँ	2058	प्रेरणादायी कहानियाँ व नाटक	पूना

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
92.	आईवडिलांचे उपकार	2058	'माता-पिता' का मराठी अनुवाद	पूना
93.	महासतियों का जीवन संदेश	2059	सुलसा आदि के चरित्र	देहुरोड
94.	आनंदघनजी पद विवेचन	2059	आनंदघनजी के 18 पदों पर विवेचन	पूना
95.	Duties towards Parents	2059	माता-पिता का अंग्रेजी	पूना
96.	चौदह गुणस्थानक	2059	'गुणस्थानक क्रमारोह विवेचन	येरवडा
97.	पर्युषण अष्टाह्निक प्रवचन	2059	पर्युषणपर्व के प्रवचन	येरवडा
98.	मधुर कहानियाँ	2059	कुमारपाल आदि का चरित्र	येरवडा
99.	पारस प्यारो लागे	2060	पार्श्व प्रभु के 10 भव आदि	येरवडा
100.	बीसवीं सदी के महानयोगी	2060	पूं.पं.श्री भद्रंकरविजयजी स्मृति ग्रंथ	दीपक ज्योतिटॉवर
101.	अमरवाणी	2060	पूं.पं. श्री भद्रंकरविजयजी म. के प्रेरक प्रवचन	दीपक ज्योतिटॉवर
102.	कर्म विज्ञान	2060	'कर्म विपाक' पर विवेचन	दीपक ज्योतिटॉवर
103.	प्रवचन के बिखरे फूल	2061	प्रवचन के सारभूत अवतरण	बोरीवली (ई)
104.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	2061	कल्पसूत्र पर दिए प्रवचन	थाणा
105.	आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	2061	प्रभु के भवों का वर्णन	थाणा
106.	ब्रह्मचर्य	2061	ब्रह्मचर्य पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
107.	भाव सामायिक	2061	सामायिक सूत्रों पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
108.	राग म्हणजे आग	2061	'क्रोध आबाद' का मराठी	श्रीपालनगर, मुंबई
109.	आओ ! उपधान-पौषध करे	2062	उपधान संबंधी विस्तृत जानकारी	भिवंडी
110.	प्रभो ! मन मंदिर पधारो	2062	प्रभु भक्ति विषयक चिंतन	आदीश्वर धाम
111.	सरस कहानियाँ	2062	नल-दमयंती आदि कहानियाँ	परेल मुंबई
112.	महावीर वाणी	2062	आगमोक्त सूक्तियों पर विवेचन	कर्जत
113.	सद्गुरु उपासना	2062	सद्गुरु का स्वरुप	कर्जत
114.	चिंतनरत्न	2062	विविध चिंतन	कर्जत
115.	जैनपर्व प्रवचन	2063	कार्तिक पूनम आदि पर्वों के प्रवचन	कर्जत
116.	नींव के पत्थर	2063	अध्यात्म प्राप्ति के 15 गुण	आदीश्वर धाम
117.	विखुरलेले प्रवचन मोती	2063	प्रवचन के बिखरे फूल का मराठी	वणी
118.	शंका समाधान भाग-2	2063	1200 प्रश्नों के जवाब	आदीश्वर धाम
119.	श्रमण शिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी	2063	पूज्यश्री का संक्षिप्त जीवन	भायंदर
120.	भाव चैत्यवंदन	2063	जग चिंतामणि से सूत्रों पर विवेचन	भिवंडी
121.	Youth will shine then	2063	'तब चमक उठेगी' का अंग्रेजी अनुवाद	भिवंडी
122.	नव तत्त्व विवेचन	2063	'नवतत्त्व' पर विवेचन	भिवंडी

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
123.	जीव विचार विवेचन	2063	'जीव विचार' पर विवेचन	भिवंडी
124.	भव आलोचना	2064	श्रावक जीवन संबंधी आलोचना स्थल	
125.	विविध पूजाएं	2064	नवपद, आदि पूजाओं का भावानुवाद	आदीश्वर धाम
126.	गुणवान बनो	2064	18 पाप स्थानकों पर विवेचन	महावीर धाम
127.	तीन भाष्य	2064	तीन भाष्यों का विवेचन	आदीश्वर धाम
128.	विविध तपमाला	2064	प्रचलित तपों की विधियां	डोंबिवली
129.	महान् चरित्र	2064	पेथडशा आदि का जीवन	कल्याण
130.	आओ ! भावयात्रा करे	2064	शत्रुंजय आदि भाव यात्राएं	कल्याण
131.	मंगल स्मरण	2064	नवस्मरण आदि संग्रह	कल्याण
132.	भाव प्रतिक्रमण भाग-1	2065	वंदित्तु तक हिन्दी विवेचन	विक्रोली
133.	भाव प्रतिक्रमण भाग-2	2065	आयरिय उवज्झाए से विवेचन	विक्रोली
134.	श्रीपालरास और जीवन	2065	श्रीपाल मयणा का रास एवं जीवन	थाणा
135.	दंडक विवेचन	2065	दंडक सूत्र पर हिन्दी विवेचन	कुर्ला
136.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें	2065	संवत्सरी प्रतिक्रमण विधि	भिवंडी
137.	सुखी जीवन की चाबियाँ	2066	मार्गानुसारिता के 35 गुण (कमलदर्शन)	मुंबई
138.	पाँच प्रवचन	2066	पाँच जाहिर प्रवचन	मोहना
139.	सज्झायों का स्वाध्याय	2066	सज्झायों का संग्रह	मोहना
140.	वैराग्य शतक	2066	वैराग्य पोषक विवेचन	मलाड
141.	गुणानुवाद	2066	10 आचार्यों का जीवन परिचय	रोहा
142.	सरल कहानियाँ	2066	प्रेरणादायी कथाएं	रोहा
143.	सुख की खोज	2066	सुख संबंधी चिंतन	रोहा
144.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-1	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-1	थाणा
145.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-2	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-2	थाणा
146.	आध्यात्मिक पत्र	2067	पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी म. के पत्र	थाणा
147.	शंका और समाधान भाग-3	2067	छोटे मोटे 750 प्रश्नों के जवाब	थाणा
148.	जीवन शणगार प्रवचन	2067	संस्कार शिबिर-रोहा के प्रवचन	धारावी
149.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-1	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
150.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-2	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
151.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-1	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
152.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-2	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
153.	ध्यान साधना	2068	ध्यान शतक-आराधना धाम	हालार
154.	श्रावक आचार दर्शक	2068	धर्म संग्रह का हिन्दी अनुवाद	राजकोट

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
155.	अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)	2068	नीव के पत्थर का मराठी अनुवाद	नासिक
156.	इन्द्रिय पराजय शतक	2068	वैराग्य वर्धक	पालीताणा
157.	जैन शब्द कोष	2068	शास्त्रिय शब्दों के अर्थ	पालीताणा
158.	नया दिन-नया संदेश	2069	तिथि अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
159.	तीर्थ यात्रा	2069	शत्रुंजय गिरनार तीर्थ महिमा	हस्तगिरि तीर्थ
160.	महामंत्र की साधना	2069	चिन्तन	पिन्डवाडा
161.	अजातशत्रु अणगार	2069	श्रद्धाजंली लेख	भद्रंकर नगर-लुणावा
162.	प्रेरक प्रसंग	2069	कहानियां	बाली
163.	The way of Metaphysical Life	2069	नीव के पत्थर का English अनुवाद	बाली
164.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-1	2070	प्राकृत प्रवेशिका	सेसली तीर्थ
165.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-2	2070	Guide Book	सेसली तीर्थ
166.	आओ ! भाव यात्रा करे ! भाग-2	2070	68 तीर्थ भावयात्रा	बेडा तीर्थ
167.	Pearls of Preaching	2070	प्रवचन मोती का अनुवाद	नाकोडा तीर्थ
168.	नवकार चिंतन	2070	चिंतन	उदयपूर
169.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-1	2070	63 दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
170.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-2	2070	63 प्रकार के दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
171.	परम तत्त्व की साधना भाग-1	2071	चिन्तन	कीर्ति स्थंभ घाणेराव
172.	रत्न संदेश भाग-1	2071	दैनिक सुविचार	बाली
173.	गागर मे सागर	2071	बाली तथा घाणेराव के प्रवचन अंश	पालीताणा
174.	रत्न संदेश भाग-2	2071	तारीख अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
175.	My Parents	2071	माता-पिता का English अनुवाद	पालीताणा
176.	श्रावकाचार प्रवचन-1	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
177.	श्रावकाचार प्रवचन-2	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
178.	परम तत्त्व की साधना भाग-2	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
179.	परम तत्त्व की साधना भाग-3	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
180.	बाली चातुर्मास विशेषांक	2069	बाली चातुर्मास	बाली
181.	उपधान स्मृति विशेषांक	2072	पालीताणा में उपधान	पालीताणा
182.	नवपद आराधना	2072	नवपद के 11 प्रवचन	लोढा धाम
183.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-1	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	गुंदेचा गार्डन
184.	हेमचंद्राचार्य और कुमारपाल	2072	जीवन चरित्र	डोंबिवली
185.	आईचे वात्सल्य	2072	माता-पिता का मराठी अनुवाद	नासिक
186.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-2	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	नासिक

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
187.	जैन-संघ व्यवस्था	2072	देव द्रव्य आदि की व्यवस्था	नासिक
188.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-1	2074	1 से 16 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
189.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-2	2074	17 से 24 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
190.	संस्मरण	2073	संयम जीवन के अनुभव	गोकाक
191.	संबोह सित्तरि	2073	वैराग्य का अमृतकुंभ	गोकाक
192.	विवेकी बनों !	2073	विवेक गुण पर विवेचन	राणे बेन्नुर
193.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-3	2073	तत्त्व चिंतन	बेंगलोर
194.	लघु संग्रहणी	2073	जैन भूगोल	बेंगलोर
195.	समाधि मृत्यु	2073	मृत्यु समय समाधि के उपाय	बेंगलोर
196.	दूसरा कर्मग्रंथ	2073	दूसरे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
197.	चौथा कर्मग्रंथ	2073	चौथे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
198.	आदर्श कहानियाँ	2074	प्रेरणादायी कहानियाँ	बेंगलोर
199.	प्रवचन वर्षा	2074	प्रवचन के बिंदु	सुशीलधाम
200.	अमृत रस का प्याला	2074	199 पुस्तकों का सार	बेंगलोर
201.	महान् योगी पुरुष	2074	पं. भद्रंकरविजयजी के जीवन प्रसंग	बेंगलोर
202.	बारह चक्रवर्ती	2074	बारह चक्रवर्तियों का जीवन	मैसूर
203.	प्रेरक प्रवचन	2074	प्रेरणादायी प्रवचन	मैसूर
204.	पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	2075	कर्मग्रंथ का विवेचन	मैसूर
205.	छठा-कर्मग्रंथ	2074	हिन्दी में विवेचन	बेंगलोर
206.	Celibacy	2074	ब्रह्मचर्य का अनुवाद	सेलम (T.N.)
207.	मंत्राधिराज प्रवचन सार	2074	पू.भद्रंकर वि. के प्रवचनांश	ईरोड (T.N.)
208.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	2075	साधु जीवन के सूत्रों पर विवेचन	कोयम्बतूर
209.	मोक्ष मार्ग के कदम	2075	मोक्ष मार्ग के 21 गुण	कोयम्बतूर
210.	शंका समाधान भाग-4	2075	मननीय प्रश्नों के जवाब	कोयम्बतूर
211.	व्यसन-मुक्ति	2076	सात व्यसन के अनर्थ	चैनइ
212.	गणधर-संवाद	2076	गौतम स्वामि आदि 11 गणधर प्रतिबोध कथा	चैनइ
213.	New Message for a New Day	2077	सुवाक्य संकलन (अंग्रेजी)	चैनइ
214.	चिंतन का अमृत-कुंभ	2077	पूज्यश्री का मार्मिक चिंतन	बेंगलोर
215.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव-बलदेव	2077	चरित्र ग्रंथ	बेंगलोर
216.	अचिंत्य चिंतामणि (भाग-1)	2077	नमस्कार महामंत्र की महिमा	बल्लारी (Kar.)
217.	अचिंत्य चिंतामणि (भाग-2)	2077	नमस्कार महामंत्र की महिमा	बल्लारी (Kar.)

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
218.	हार्दिक श्रद्धांजलि	2077	पंन्यासजी म.सा. के शिष्य प्रशिष्य आदि के जीवन चरित्र	बल्लारी (कर्णाटक)
219.	सुखी जीवन के Mile-Stone	2077	प्रवचन बिन्दू	बीजापूर(Kar.)
220.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-1	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
221.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-2	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
222.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-3	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
223.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-4	2078	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
224.	अर्हद् दिव्य-संदेश (दीक्षा-विशेषांक)	2078	संयम जीवन की महत्ता एवं मु. विमलपुण्यविजयजी की दीक्षा प्रसंग	इचलकरंजी (M.S.)
225.	'बेंगलोर' प्रवचन-मोती	2078	बेंगलोर में हुए प्रवचन	कराड (M.S.)
226.	श्री नमस्कार महामंत्र	2078	पू.पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	बोरीवली (ई)
227.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	2078	पू.पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	भायंदर (W)
228.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	2078	64 प्रकारी पूजा का विवेचन	भायंदर
229.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-1)	2078	तत्त्वार्थ सूत्र का हिन्दी विवेचन	भायंदर
230.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-2)	2078	तत्त्वार्थ सूत्र का हिन्दी विवेचन	भायंदर
231.	वर्धमान सामायिक साधना श्रेणी	2078	सामायिक विधि एवं श्रेणी	भायंदर
232.	वैराग्य-वाणी	2079	पू.आ.श्री रामचन्द्रसूरिजी के प्रवचन	भायंदर
233.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	2079	समकित 67 बोल विवेचन	महावीर धाम
234.	जीवन झांकी	2079	मु. पुण्योदयविजयजी का परिचय	कामसेट
235.	मन के जीते जीत है	2079	मन पर चिंतन	थाणा
236.	नमस्कार मीमांसा	2079	नवकार चिंतन	भायंदर
237.	परमेष्ठि-नमस्कार	2079	नवकार चिंतन	निगडी
238.	धर्म बीज	2079	चार भावना चिंतन	निगडी
239.	45 आगम परिचय	2079	आगम बोध	निगडी
240.	नित्य देव वंदन	2080	देव वंदन	लोढा धाम
241.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	2080	शंका समाधान	वडगांव
242.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	2080	शंका समाधान	वडगांव
243.	तीसरा कर्मग्रन्थ	2080	तीसरे कर्मग्रंथ का विवेचन	वीरवाडा

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा. का संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ नाम	: राजु (राजमल चोपड़ा)
माता का नाम	: चंपाबाई
पिता का नाम	: छगनराजजी गेनमलजी चोपड़ा
जन्मभूमि	: बाली (राज.)
जन्म तिथि	: भादो सुद-3, संवत् 2014 दि. 16-9-1958
बचपन में धार्मिक अभ्यास	: पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार	: 18 जून 1974
व्यावहारिक अभ्यास	: 1st year B.Com. (पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज फालना-राज.)
दीक्षा दाता	: पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव	: अध्यात्मयोगी पू. पंन्यास **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षा दिन	: माघ शुक्ला 13, संवत् 2033 दि. 2-2-1977
समुदाय	: शासन प्रभावक पू.आ. **श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**
दीक्षा दिन विशेषता	: भारत भर में लगभग 50 ऊपर दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोड़ा	: 9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल	: न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र	: 18 वर्ष
बड़ी दीक्षा	: फाल्गुन शुक्ला 12, संवत् 2033
बड़ी दीक्षा स्थल	: घाणेराव (राज.)
प्रथम चातुर्मास	: संवत् 2033 पाटण पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सान्निध्य में

◆ **अभ्यास :** प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि.

◆ **भाषा बोध :** हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि

◆ **प्रथम प्रवचन प्रारंभ :** फागुन सुदी 14, संवत् 2034 पाटण (गुजरात)

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ :** बाली संवत् 2038

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन :** बाली (दो बार), पाली (दो बार), रतलाम, अहमदाबाद (ज्ञानमंदिर), पाटण, सुरेन्द्रनगर, रानीगाँव, पिंडवाड़ा, उदयपुर, जामनगर, अहमदाबाद (गिरधरनगर), थाणा, कल्याण, दादर (मुंबई), सायन (मुंबई), धूलिया, कराड़, चिंचवड़, भायंदर, पूना, येरवड़ा, दीपक ज्योति टॉवर, श्रीपाल नगर, कर्जत, भिवंडी (दो बार), कल्याण (दो बार), रोहा, भायंदर, पालीताणा (दो बार) नासिक, बेंगलोर, मैसूर, कोयम्बत्तूर, चैन्नइ, बीजापूर, भायंदर, निगडी ।

◆ **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्णाटक तामिलनाडू आदि ।

◆ **पादविहार :** लगभग 47,000 कि.मी. ।

◆ **(छ'री पालित संघ में मार्गदर्शन-प्रवचन) :** बरलूट से शत्रुंजय, गोदन से जैसलमेर, वल्लभीपुर से पालीताणा, लुणावा से राणकपुर पंचतीर्थी

◆ **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरियाजी, गिरधरनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड़ से कुंभोज, सोलापुर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर, हस्तगिरि से शत्रुंजय होकर गिरनार, शत्रुंजय बारह गाऊ, सेवाडी से राणकपूर पंचतीर्थी, कोयम्बत्तूर से अव्वलपुंदरी ।

◆ **प्रथम पुस्तक आलेखन :** **''वात्सल्य के महासागर''** वि.सं.संवत् 2038

◆ **अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकें :** 243

◆ **शिष्य-प्रशिष्य : स्व. मु. श्री उदयरत्नविजयजी म.,**
स्व. मुनि श्री केवलरत्नविजयजी म., स्व. मुनि श्री कीर्तिरत्नविजयजी म.,
मुनि श्री प्रशांतरत्नविजयजी म., मुनि श्री शालिभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री स्थूलभद्रविजयजी म., स्व. मुनि श्री यशोभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री विमलपुण्यविजयजी म., मुनि श्री निर्वाणभद्रविजयजी म.
मुनि श्री महापुण्यविजयजी म.

◆ **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो), कर्जत, विक्रोली, मोहना, पालीताणा (दो बार), सेसली, कीर्तिस्तंभ (घाणेराव), नासिक, सुशीलधाम (बेंगलोर), मैसूर, महावीर धाम (मुंबई), लोढा धाम ।

◆ **गणि पदवी :** वैशाख वदी-6, संवत् 2055, दि.7-5-1999 चिंचवड गाँव, पूना.

◆ **पंन्यास पदवी :** कार्तिक वदी-5, संवत् 2061, दि.2-12-2004 श्रीपालनगर, मुंबई.

◆ **आचार्य पदवी :** पोष वदी-1, संवत् 2067, दि.20-1-2011 थाणा ।

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	पृ. सं
1.	तीसरा-कर्मग्रन्थ-मूलसूत्र	1
2.	तीसरा कर्मग्रंथ (मंगलाचरणादि)	3
3	चौदह-मार्गणाएँ	4
4.	संज्ञाए	10
5.	गतिमार्गणा	12
6.	इन्द्रिय व काय मार्गणा में बंध स्वामित्व	27
7.	योग मार्गणा में बंध-स्वामित्व	32
8.	वेद मार्गणा	39
9.	कषाय-मार्गणा	40
10.	ज्ञान, संयम और दर्शन मार्गणा में बंध स्वामित्व	42
11.	सम्यक्त्व मार्गणा में बंध स्वामित्व	47
12.	आहारी मार्गणा में बंध स्वामित्व	51
13.	लेश्या मार्गणा में बंध स्वामित्व	54
14.	भव्य और संज्ञी में बंध स्वामित्व	57
15.	लेश्या में मतांतर	58
16.	मार्गणाओं में उदय-उदीरणा-सत्ता-स्वामित्व	63

तीसरा-कर्मग्रन्थ-मूलसूत्र

बंधविहाण विमुक्कं, वंदिय सिरिवद्धमाण जिणचंदं ।
गइआइसुं वुच्छं, समासओ बंधसामित्तं ।।1।।

गइ इंदिए य काए, जोए वेए कसाय नाणे य ।
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सन्नि आहारे ।।2।।

जिण सुरविउवाहारदु देवायु य निरय सुहुम विगलतिगं ।
एगिंदि थावरायव-नपु-मिच्छं-हुंड-छेवट्ठं ।।3।।

अण-मज्झागिइ-संघयण-कुखगइ-नियइत्थि-दुहग-थीणतिगं ।
उज्जोय तिरिदुगं तिरि, नराउ नर-उरल-दुग-रिसहं ।।4।।

सुर-इगुणवीसवज्जं, इगसउ-ओहेण बंधहिं निरया ।
तित्थ विणा मिच्छि सयं, सासणि नपुचउ विणा छनुई ।।5।।

विणु अणछवीस मीसे, बिसयरि सम्ममि जिणनराउ-जुया ।
इय रयणाइसु भंगो, पंकाइसु तित्थयर-हीणो ।।6।।

अजिणमणुआउ ओहे, सत्तमिए नरदुगुच्चविणु मिच्छे ।
इगनवइ सासाणे, तिरिआउ नपुंस-चउवज्जं ।।7।।

अणचउवीस विरहिया, सनरदुगुच्चा य सयरि मीसदुगे ।
सतरसओ ओहि मिच्छे, पज्जतिरिया विणु जिणाहारं ।।8।।

विणु निरयसोल सासणि, सुराउ अण-एगतीस विणु मीसे ।
ससुराउ सयरि सम्मे, बीअकसाए विणा देसे ।।9।।

इय चउ-गुणेसु वि नरा, परमजया सजिण-ओहु देसाइ ।
जिण-इक्कारस-हीणं, नवसय अपजत्ततिरिअनरा ।।10।।

निरयव्व सुरा नवरं, ओहे मिच्छे इगिंदि-तिग-सहिआ ।
कप्पदुगे वि य एवं, जिणहीणो जोइ-भवणवणे ।।11।।

रयणुव्व सणंकुमाराइ, आणयाइ उज्जोय-चउरहिया ।
अपज्जतिरिअव्व नवसय-मिगिंदि पुढवीजल-तरु-विगले ।।12।।

छ नवइ सासणि विणु सुहुमतेर, केइ पुण बिंति चउनवइ ।
तिरिय-नराऊहिं विणा, तणु पज्जत्तिं न जंति जओ ।।13।।

ओहु पणिंदि तसे, गइतसे जिणिक्कार नरतिगुच्च विणा ।
मणवयजोगे ओहो, उरले नरभंगु तम्मिस्से ।।14।।

आहार छग विणोहे चउदस सउ मिच्छि जिणपणगहीणं ।
सासणि चउनवइ विणा, तिरिअनराऊ सुहुमतेर ।।15।।

अण चउवीसाइ विणा, जिण पणजुअ सम्मि जोगिणो सायं ।
विणु तिरिनराउ कम्मे वि, एवमाहारदुगि ओहो ।।16।।

सुरओहो वेउव्वे, तिरियनराउ रहिओ अ तम्मिस्से ।
वेयतिगाइम बिअ तिअ, कसाय नव दु चउ पंच गुणा ।।17।।

संजलणतिगे नव दस, लोभे चउ अजइ दुति अनाणतिगे ।
बारस अचक्खु चक्खुसु, पढमा अहखाय चरिमचऊ ।।18।।

मणनाणि सग जयाई, समइयच्छेअ चउ दुन्नि परिहारे ।
केवलदुगि दो चरमा, ऽजयाइ नव मइसुओहि दुगे ।।19।।

अड उवसमि चउ वेअगि, खइए इक्कार मिच्छितिगि देसे ।
सुहुमि सठाणं तेरस, आहारगि निअनिअ गुणोहो ।।20।।

परमुवसमि वट्टंता, आउ न बंधंति तेण अजयगुणे ।
देव मणुआउ हीणो, देसाइसु पुण सुराउ विणा ।।21।।

ओहे अट्ठारसयं आहारदुगूण माइलेसतिगे ।
तं तित्थोणं मिच्छे, साणाइसु सव्वहिं ओहो ।।22।।

तेऊ निरय नवूणा उज्जोअचउ निरय बार विणु सुक्का ।
विणु निरयबार पम्हा, अजिणाहारा इमा मिच्छे ।।23।।

सव्वगुण भव्वसन्निसु, ओहु अभव्वा असन्नि मिच्छिसमा ।
सासणि असन्नि सन्निव्व, कम्मणभंगो अणाहारे ।।24।।

तिसु दुसु सुक्काइ गुणा, चउ सग तेर त्ति बंध सामित्तं ।
देविंदसूरि रइअं नेयं कम्मत्थयं सोउं ।।25।।

आ. श्री देवेन्द्रसूरीश्वरजी विरचित 'बंध स्वामित्व' नाम का

तृतीय कर्मग्रंथ

1 मंगलाचरणादि

बंधविहाण विमुक्कं, वंदिय सिरिवद्धमाण जिणचंदं ।
गइआइसुं वुच्छं, समासओ बंधसामित्तं ।।1।।

शब्दार्थ

बंधविहाण=बंध विधान	**गइआइसु=**गति आदि में
विमुक्कं=विमुक्त	**वुच्छं=**कहूंगा
वंदिय=वंदन करके	**समासओ=**संक्षेप में
सिरिवद्धमाण=श्री वर्धमान	**बंधसामित्तं=**बंध स्वामित्व
जिणचंदं=जिनेश्वर में चंद्र समान	

भावार्थ : कर्मबंध के सभी प्रकारों से बंधनमुक्त बने जिनेश्वरों में चंद्र समान महावीर प्रभु को वंदन करके गति आदि 62 मार्गणाओं में बंध का स्वामित्व कहूंगा ।

विवेचन : ग्रंथ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगलाचरण अनिवार्य है । मंगलाचरण से विघ्नों का नाश होता है, जिसके फलस्वरूप प्रारंभ किए हुए कार्य की निर्विघ्न समाप्ति होती है ।

इस जगत् में प्रभु का नाम सर्वश्रेष्ठ मंगल है ।

आसन्न उपकारी होने के नाते ग्रंथकारश्री ने महावीर प्रभु को याद किया है । यद्यपि महावीर प्रभु तो अनंत गुणों के भंडार हैं, फिर भी प्रस्तुत में प्रभु के दो मुख्य गुणों का वर्णन कर प्रभु की विशेषताएँ बतलाई हैं ।

(1) विमुक्त–संसारी जीव आठ कर्मों के बंधन से ग्रस्त होकर संसार में एक गति से दूसरी गति में चारों ओर परिभ्रमण कर रहे हैं परंतु महावीर प्रभु ने तो संसार के मूल कर्मबंध का ही विच्छेद कर दिया है । कर्म के बंध के भेद-प्रभेद से प्रभु सर्वथा मुक्त बने हैं ।

संयम जीवन के स्वीकार के बाद अपने प्रबल पुरुषार्थ द्वारा प्रभु आठों कर्मों से मुक्त हो चुके हैं ।

(2) जिनचन्द्र–ज्योतिष निकाय में चंद्र अत्यंत ही सौम्य व शीतल कहलाता है । राग-द्वेष से मुक्त होने से प्रभु चंद्र की तरह अत्यंत ही शीतल-शांत हैं ।

अवधि जिन आदि की अपेक्षा से प्रभु अत्यंत ही श्रेष्ठ हैं । तीर्थंकर नाम कर्म के उदय के फलस्वरूप प्रभु की सौम्यता-शीतलता अनेक जीवों को लाभ करनेवाली है ।

किसी भी वस्तु को सूक्ष्मता से जानने-समझने के लिए जो अलग-अलग द्वार हैं-उसी को मार्गणा कहते हैं ।

शास्त्र में गति आदि मार्गणाओं के मूल 14 भेद और उत्तर भेद 62 बतलाए गए हैं ।

इन 62 मार्गणाओं में रहे जीव कौन-कौनसी कर्म प्रकृतियों का बंध करते हैं-उसका वर्णन इस ग्रंथ में है । इस कारण इस ग्रंथ का नाम `बंध-स्वामित्व' रखा है ।

2 14 मार्गणाएँ

गइ इंदिए य काए, जोए वेए कसाय नाणे य ।
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सन्नि आहारे ।।2।।

शब्दार्थ

गइ=गति	**संजम**=संयम
इंदिए=इन्द्रियाँ	**दंसण**=दर्शन
काए=काय	**लेसा**=लेश्या
जोए=योग	**भव**=भव्य
वेए=वेद	**सम्मे**=सम्यक्त्व
कसाय=कषाय	**सन्नि**=संज्ञी
नाणे=ज्ञान	**आहारे**=आहारी

भावार्थ : चौदह मूल मार्गणाएँ हैं-(1) गति (2) इन्द्रिय (3) काय (4) योग (5) वेद (6) कषाय (7) ज्ञान (8) संयम (9) दर्शन (10) लेश्या (11) भव्य (12) सम्यक्त्व (13) संज्ञी और (14) आहारी ।

विवेचन : आत्मा के विकास के 14 गुणस्थानक है, उसी प्रकार यहाँ 14 मार्गणाएँ बतलाई हैं । इनके लक्षण इस प्रकार हैं–

(1) गति : गति नाम कर्म के उदय से होनेवाली जीव की पर्याय अथवा मनुष्य आदि भवों में जाने को गति कहते हैं । इसके चार भेद हैं ।

(2) इन्द्रिय : ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होने पर भी आत्मा को पदार्थ का ज्ञान कराने में निमित्तभूत साधन को इन्द्रिय कहते हैं । अथवा जिसके द्वारा आत्मा को जाना जाय, उसे इन्द्रिय कहते हैं । इसके पांच भेद है ।

(3) काय : जाति नाम कर्म के उदय से होनेवाली आत्मा के पर्याय को काय कहते हैं । इसके छह भेद है ।

(4) योग : मन, वचन और काया के व्यापार को योग कहते हैं । शरीर नाम कर्म के उदय से मन, वचन और काया से युक्त जीव की कर्म ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति को योग कहते हैं । इसके तीन भेद है ।

(5) वेद : नोकषाय मोहनीय कर्म के उदय से इन्द्रिय रमणता की अभिलाषा को वेद कहते हैं । इसके तीन भेद है ।

(6) कषाय : आत्मा के जन्म-मरणरूप संसार को जो बढ़ाए उसे कषाय कहते हैं । इसके चार भेद है ।

(7) ज्ञान : जिसके द्वारा द्रव्य, गुण और पर्याय को जीव जानता है उसे ज्ञान कहते हैं । इसके आठ भेद है ।

(8) संयम : सावद्य पाप-प्रवृत्तियों से निवृत्त होना, उसे संयम कहते हैं । इसके सात भेद है ।

(9) दर्शन : सामान्य और विशेष रूप पदार्थ के मात्र सामान्य अंश को ग्रहण करना, उसे दर्शन कहते हैं । इसके चार भेद है ।

(10) लेश्या : जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त हो, उसे लेश्या कहते हैं । इसके छह भेद है ।

(11) भव्य : मोक्ष में जाने के लिए योग्य जीव को भव्य कहते हैं । इसके दो भेद है ।

(12) सम्यक्त्व : जिनेश्वर के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा करना, उसे सम्यक्त्व कहते हैं । इसके छह भेद है ।

(13) संज्ञी : आहार आदि विषय की अभिलाषा को संज्ञा कहते हैं, जिसे संज्ञा हो उसे संज्ञी कहते हैं । इसके दो भेद है ।

(14) आहार : तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलों के ग्रहण को आहार कहते हैं । इसके दो भेद है ।

मार्गणाओं के उत्तर भेद

मार्गणा	भेद	स्वरूप
1. गति	4	नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव
2. इन्द्रिय	5	एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय,पंचेन्द्रिय
3. काय	6	पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति और त्रस
4. योग	3	मन, वचन, काय
5. वेद	3	पुरुष, स्त्री, नपुंसक
6. कषाय	4	क्रोध, मान, माया, लोभ
7. ज्ञान	8	मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव, केवलज्ञान, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान
8. संयम	7	सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात, देशविरति, अविरति
9. दर्शन	4	चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल
10. लेश्या	6	कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म, शुक्ल
11. भव्य	2	भव्य, अभव्य
12. सम्यक्त्व	6	क्षायिक, उपशम, मिथ्यात्व, मिश्र, सास्वादन, क्षायोपशमिक
13. संज्ञि	2	संज्ञी, असंज्ञी
14. आहार	2	आहारक, अनाहारक

प्रश्न : इन मार्गणाओं में ज्ञान मार्गणा नाम देकर अज्ञान का और संयम मार्गणा नाम देकर अविरति (असंयम) का समावेश क्यों किया है ?

उत्तर : (1) इन 14 मार्गणाओं में जगत् के सभी जीवों का समावेश करने का ध्येय होने से प्रतिपक्षभूत विपरीत मार्गणा का भी समावेश कर दिया गया है ।

(2) आम की बाड़ी में नीम के दो-पाँच वृक्ष हों तो भी उसे आम की बाड़ी ही कहा जाता है, क्योंकि उस बाड़ी में आम के वृक्षों की ही बहुलता है, उसी प्रकार ज्ञान व संयम मार्गणाओं में ज्ञान व संयम की प्रधानता होने पर भी गौण रूप में अज्ञान-अविरति आदि का भी समावेश कर दिया है ।

मार्गणाओं में गुणस्थानक

1. गति : देव व नरक गति में 1 से 4 गुणस्थानक, तिर्यंच में 1 से 5 और मनुष्य में 1 से 14 गुणस्थानक हो सकते हैं ।

2. जाति : एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय में 1 और 2 गुणस्थानक व पंचेन्द्रिय में 1 से 14 गुणस्थानक हो सकते हैं ।

3. काय : पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में 1 और 2 गुणस्थानक, तेउकाय और वायुकाय में 1 (पहला) गुणस्थानक व त्रसकाय में 1 से 14 गुणस्थानक हो सकते हैं ।

4. योग : तीनों योगों में 1 से 13 गुणस्थानक हो सकते हैं ।

5. वेद : तीनों वेद में 1 से 9 गुणस्थानक हो सकते है ।

6. कषाय : क्रोध, मान, माया में 1 से 9 व लोभ में 1 से 10 गुणस्थानक हो सकते है ।

7. ज्ञान : मति, श्रुत व अवधिज्ञान में 4 से 12 गुणस्थानक, मनःपर्यवज्ञान में 6 से 12 व केवलज्ञान में 13 व 14 दो गुणस्थानक हो सकते है । अज्ञानत्रिक में पहले दो या तीन गुणस्थानक होते है ।

8. संयम : सामायिक व छेदोपस्थापनीय में 6 से 9 गुणस्थानक, परिहार विशुद्धि में 6 व 7, सूक्ष्म संपराय में 10 वां, यथाख्यात में 11 से 14, देशविरति में 5वाँ तथा अविरति में 1 से 4 गुणस्थानक हो सकते है ।

9. दर्शन : चक्षुदर्शन व अचक्षुदर्शन में 1 से 12 गुणस्थानक, अवधिदर्शन में 4 से 12 गुणस्थानक व केवलदर्शन में 13 व 14 गुणस्थानक हो सकते है ।

10. लेश्या : कृष्ण, नील व कापोत लेश्या में 1 से 6 गुणस्थानक तेजोलेश्या व पद्मलेश्या में 1 से 7 गुणस्थानक व शुक्ल लेश्या में 1 से 13 गुणस्थानक हो सकते है ।

11. भव्य : भव्य को 1 से 14 व अभव्य को पहला ही गुणस्थानक होता है ।

12. सम्यक्त्व : उपशम सम्यक्त्व में 4 से 11 तक, क्षायिक में 4 से 14 तथा क्षयोपशमिक में 4 से 7 गुणस्थानक हो सकते है । मिथ्यात्व में 1 ला, सास्वादन में 2रा तथा मिश्र में 3रा गुणस्थानक ही होता है ।

13. संज्ञी : संज्ञी में 1 से 14 गुणस्थानक व असंज्ञी में 1 और 2 गुणस्थानक हो सकते है ।

14. आहार : आहार में 1 से 13 व अनाहारक में 1,2,4,13 व 14 वां ये पांच गुणस्थानक हो सकते है ।

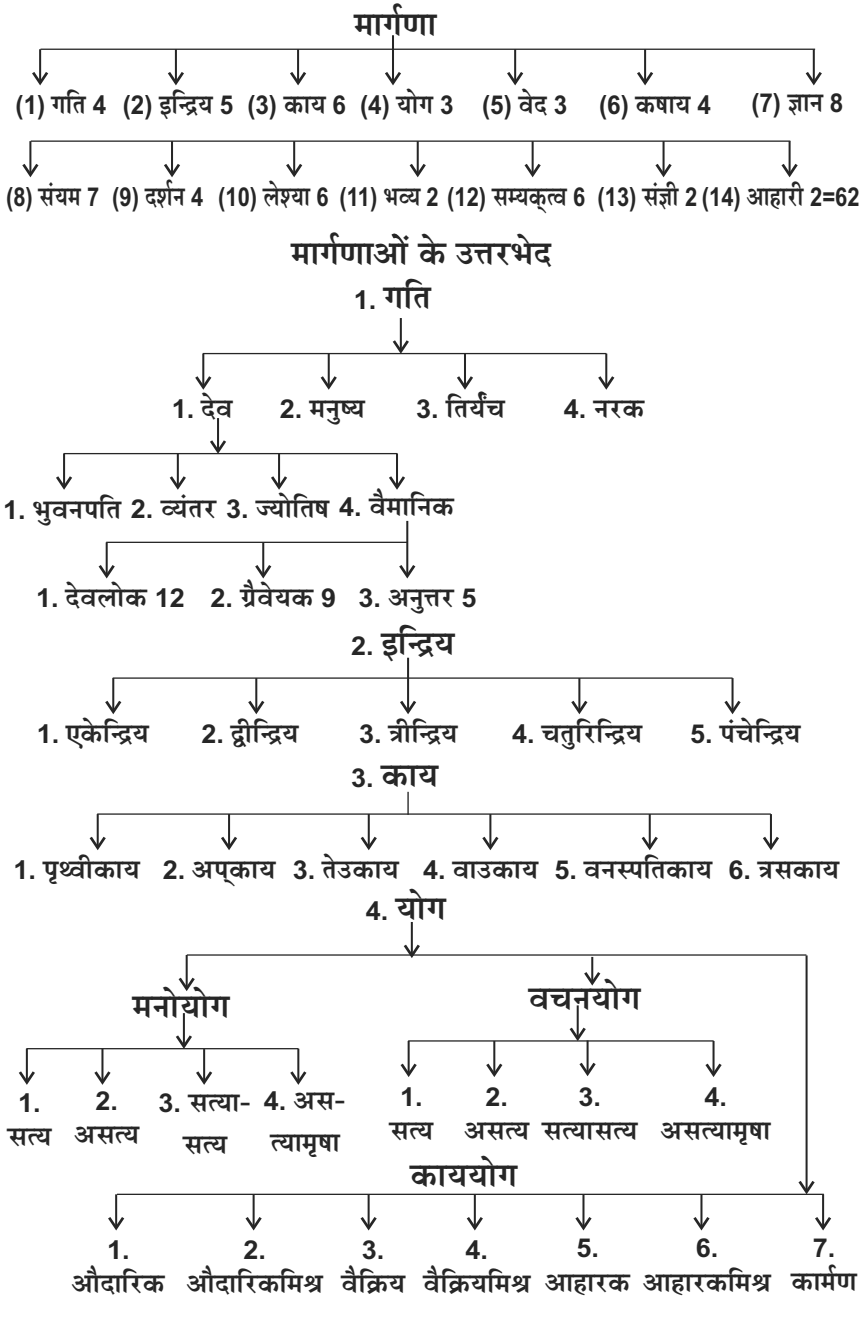

मार्गणा

(1) गति 4 (2) इन्द्रिय 5 (3) काय 6 (4) योग 3 (5) वेद 3 (6) कषाय 4 (7) ज्ञान 8

(8) संयम 7 (9) दर्शन 4 (10) लेश्या 6 (11) भव्य 2 (12) सम्यक्त्व 6 (13) संज्ञी 2 (14) आहारी 2=62

मार्गणाओं के उत्तरभेद

1. गति

1. देव 2. मनुष्य 3. तिर्यंच 4. नरक

- 1. देव
  - 1. भुवनपति 2. व्यंतर 3. ज्योतिष 4. वैमानिक
    - 4. वैमानिक
      - 1. देवलोक 12 2. ग्रैवेयक 9 3. अनुत्तर 5

2. इन्द्रिय

1. एकेन्द्रिय 2. द्वीन्द्रिय 3. त्रीन्द्रिय 4. चतुरिन्द्रिय 5. पंचेन्द्रिय

3. काय

1. पृथ्वीकाय 2. अप्काय 3. तेउकाय 4. वाउकाय 5. वनस्पतिकाय 6. त्रसकाय

4. योग

मनोयोग

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्या-सत्य 4. अस-त्यामृषा

वचनयोग

1. सत्य 2. असत्य 3. सत्यासत्य 4. असत्यामृषा

काययोग

1. औदारिक 2. औदारिकमिश्र 3. वैक्रिय 4. वैक्रियमिश्र 5. आहारक 6. आहारकमिश्र 7. कार्मण

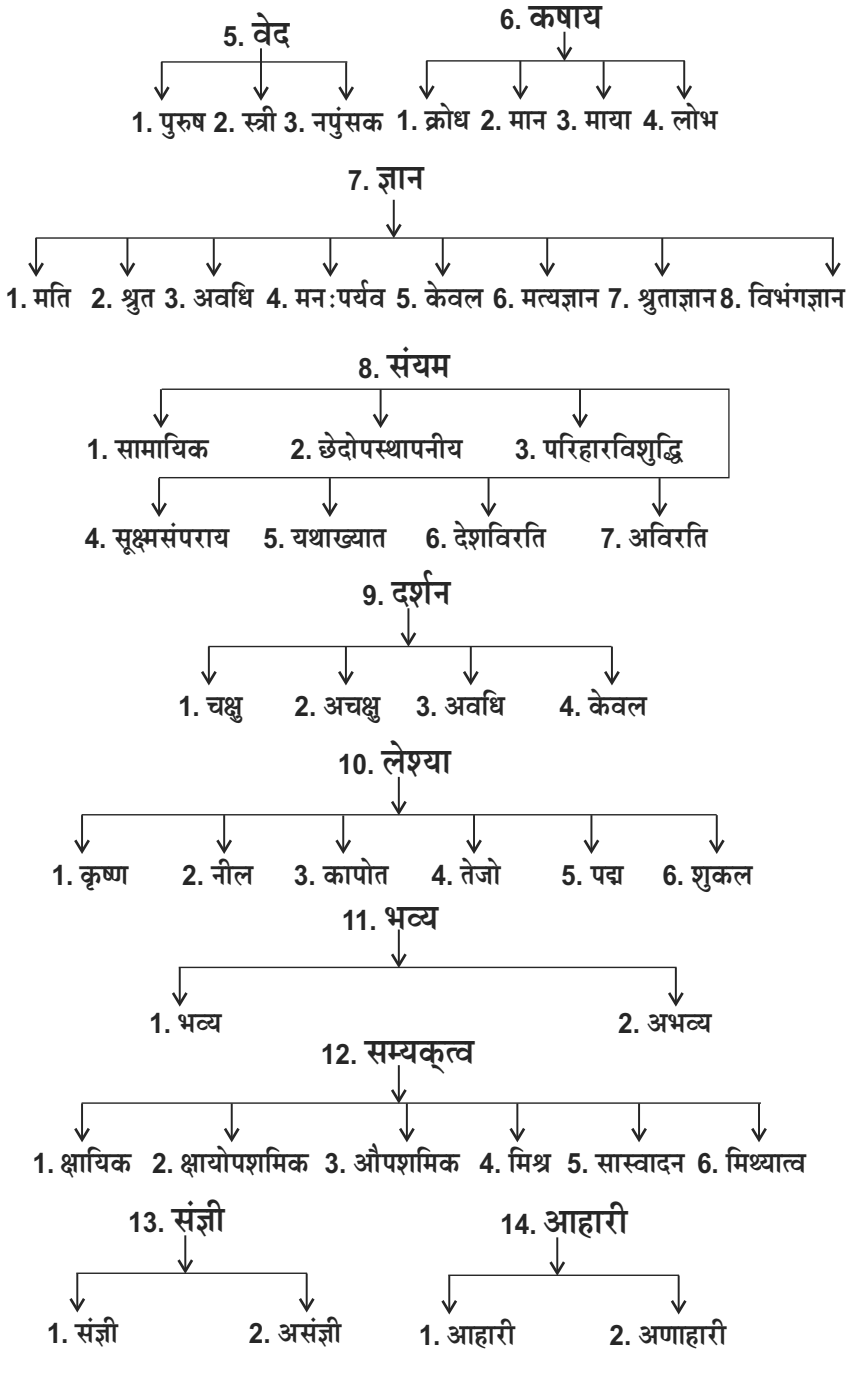
5. वेद
1. पुरुष 2. स्त्री 3. नपुंसक
6. कषाय
1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ
7. ज्ञान
1. मति 2. श्रुत 3. अवधि 4. मन:पर्यव 5. केवल 6. मत्यज्ञान 7. श्रुताज्ञान 8. विभंगज्ञान
8. संयम
1. सामायिक 2. छेदोपस्थापनीय 3. परिहारविशुद्धि
4. सूक्ष्मसंपराय 5. यथाख्यात 6. देशविरति 7. अविरति
9. दर्शन
1. चक्षु 2. अचक्षु 3. अवधि 4. केवल
10. लेश्या
1. कृष्ण 2. नील 3. कापोत 4. तेजो 5. पद्म 6. शुकल
11. भव्य
1. भव्य 2. अभव्य
12. सम्यक्त्व
1. क्षायिक 2. क्षायोपशमिक 3. औपशमिक 4. मिश्र 5. सास्वादन 6. मिथ्यात्व
13. संज्ञी
1. संज्ञी 2. असंज्ञी
14. आहारी
1. आहारी 2. अणाहारी

3 संज्ञाए

जिण सुरविउवाहारदु देवायु य निरय सुहुम विगलतिगं ।
एगिंदि थावरायव नपु-मिच्छं-हुंड-छेवट्ठं ।।3।।
अण मज्झागिइ संघयण कुखगइ नियइत्थि दुहग थीणतिगं ।
उज्जोय तिरिदुगं तिरि, नराउ नर उरल दुग रिसहं ।।4।।

शब्दार्थ

जिण=तीर्थंकर नामकर्म
सुरविउव्वाहारदु=देवद्विक,वैक्रियद्विक, आहरकद्विक
देवाउय=देव आयुष्य
निरय=नरक
सुहुम=सूक्ष्म
विगलतिगं=विकलेन्द्रियत्रिक
एगिंदि=एकेन्द्रिय जाति
थावरायव=स्थावर-आतप
नपु=नपुंसक वेद
मिच्छं=मिथ्यात्व
हुंड=हुंडक
छेवट्ठं=सेवार्त संघयण
अण=अनंतानुबंधी चतुष्क
मज्झागिइ=मध्य के चार संस्थान
संघयण=संघयण
कुखगइ=अशुभ विहायोगति
निय=नीच गोत्र
इत्थि=स्त्री वेद
दुहग=दौर्भाग्य
थीणतिगं=थीणद्धि त्रिक
उज्जोय=उद्योत
तिरिदुगं=तिर्यंच द्विक
तिरिनराउ=तिर्यंच-मनुष्य आयु
नर=मनुष्य
उरल दुग=औदारिकद्विक
रिसहं=वज्र ऋषभ नाराच

भावार्थ :

जिन नाम, सुरद्विक, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, देवायु, नरकत्रिक, सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, एकेन्द्रिय, स्थावरनाम, आतपनाम, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, सेवार्त संघयण, अनंतानुबंधी चतुष्क, मध्यम संस्थान चतुष्क, मध्यम संघयण चतुष्क, अशुभ विहायोगति, नीच गोत्र, स्त्री वेद, दुर्भगत्रिक, स्त्यानर्द्धित्रिक, उद्योत, तिर्यंचद्विक, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक और वज्रऋषभ नाराच संघयण ये 55 प्रकृतियाँ, बंध-स्वामित्व बताने में सहायक होने से यहाँ क्रमशः बतलाई है ।

विवेचन :

गुणस्थानकों में बंध योग्य 120 प्रकृतियाँ हैं । इन दो गाथाओं में 55 प्रकृतियों का संग्रह किया गया है । यहाँ संकेत द्वारा अन्य-अन्य प्रकृतियों का संग्रह किया है । जिससे आगे बंध योग्य सभी प्रकृतियों का उल्लेख न कर पहली प्रकृति का नाम लिखकर बाद में संख्या देकर उनका भी संग्रह कर लिया है ।

उदा. `सुरइगुणवीस' इस पद से पांचवी गाथा में देवद्विक से लेकर आगे की 19 प्रकृतियों का संग्रह किया है ।

संग्रह की गई प्रकृतियाँ

1. तीर्थंकर नाम कर्म
2. **देवद्विक**=देवगति, देवानुपूर्वी
3. **वैक्रियद्विक**=वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग
4. **आहारकद्विक**=आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग
5. देवायु
6. **नरकत्रिक**=नरक गति, नरकानुपूर्वी, नरक आयुष्य
7. **सूक्ष्मत्रिक**=सूक्ष्मनाम, अपर्याप्तनाम, साधारणनाम
8. **विकलत्रिक**=द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय
9. एकेन्द्रियजाति
10. स्थावर
11. आतप नामकर्म
12. नपुंसक वेद
13. मिथ्यात्व मोहनीय
14. हुंडक संस्थान
15. सेवार्त संघयण
16. **अनंतानुबंधी चतुष्क** = अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ ।
17. **मध्यम संस्थान चतुष्क** = न्यग्रोध परिमंडल, सादि, वामन, कुब्ज ।

18. **मध्यम संघयण चतुष्क** = ऋषभ नाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलिका संघयण ।
19. अशुभ विहायोगति
20. नीच गोत्र
21. स्त्री वेद
22. **दुर्भगत्रिक** = दुर्भग, दु:स्वर और अनादेय नाम कर्म
23. **स्त्यानर्द्धित्रिक** = निद्रानिद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यानर्द्धि
24. उद्योत
25. **तिर्यंचद्विक** = तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी
26. तिर्यंच आयुष्य
27. मनुष्य आयुष्य
28. **मनुष्यद्विक** = मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी
29. **औदारिकद्विक** = औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग
30. वज्रऋषभ नाराच संघयण

4 गतिमार्गणा में बंध स्वामित्व

नरकगति में बंध स्वामित्व

सुर इगुणवीसवज्जं, इगसउ ओहेण बंधहिं निरया ।
तित्थविणा मिच्छि सयं, सासणि नपुचउ विणा छनुई ।।5।।

शब्दार्थ

सुर=देवद्विक आदि	**तित्थ**=तीर्थंकर नामकर्म
इगुणवीस=उन्नीस	**विणा**=बिना
वज्जं=छोड़कर	**मिच्छि**=मिथ्यात्व में
इगसउ=एक सौ एक	**सयं**=सौ
ओहेण=ओघ से	**सासणि**=सास्वादन में
बंधहिं=बाँधता है	**नपुचउ**=नपुंसक चतुष्क
निरया=नरक जीव	**छनुई**=छियानवे

भावार्थ : बंध योग्य 120 प्रकृतियों में से सुरद्विक आदि 19 प्रकृतियों को छोड़कर नारक जीव 101 प्रकृतियों को सामान्य से बाँधते हैं ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक में रहा नारक जीव तीर्थंकर नामकर्म को छोड़ 100 प्रकृतियों को तथा सास्वादन गुणस्थानक में नपुंसक चतुष्क को छोड़ 96 प्रकृतियों को बाँधते हैं ।

विवेचन :

चौदह मार्गणाओं में सर्व प्रथम गति मार्गणा है । गति मार्गणा में सर्व प्रथम नरक गति संबंधी वर्णन करते हैं । नरक भी 7 हैं । चौथी नरक से आगे की नरकों के बंध-स्वामित्व की बात आगे की गाथाओं में होने से यहाँ सर्व प्रथम पहली तीन नरकों के बंध स्वामित्व की बात करते हैं ।

पहली तीन नरक पृथ्वी के नारक सामान्य से 101 कर्म प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

पहली तीन नरक में से निकले हुए नारक–संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच व मनुष्य का भव ही प्राप्त करते हैं, शेष एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, अपर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच, अपर्याप्ता पंचेन्द्रिय मनुष्य व देव-नरक के भव को प्राप्त नहीं करते हैं, अतः उन भवों में गमन योग्य 19 प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं ।

वे (1) देवगति (2) देवानुपूर्वी (3) वैक्रियशरीर (4) वैक्रिय अंगोपांग (5) आहारक शरीर (6) आहारक अंगोपांग (7) देवायु (8) नरकगति (9) नरकानुपूर्वी (10) नरकायु (11) सूक्ष्म नाम (12) अपर्याप्त नाम (13) साधारण नाम (14) द्वीन्द्रिय जाति (15) त्रीन्द्रिय जाति (16) चतुरिन्द्रिय जाति (17) एकेन्द्रिय जाति (18) स्थावर नाम (19) आतप नाम-इन प्रकृतियों को छोड 101 कर्म प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

नरक के जीव देव व नरक में पैदा नहीं होते हैं, अतः देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी और नरक आयु का बंध नहीं करते हैं ।

सूक्ष्म नाम कर्म का उदय सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों को, अपर्याप्त नामकर्म का उदय अपर्याप्त तिर्यंच-मनुष्य को तथा साधारण नामकर्म का उदय साधारण वनस्पति को होता है ।

एकेन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतपनाम ये तीन प्रकृतियाँ एकेन्द्रिय प्रायोग्य तथा विकलेन्द्रिय त्रिक विकलेन्द्रिय प्रायोग्य है-ये छह प्रकृतियाँ भी नारक जीव नहीं बाँधते हैं ।

आहारक द्विक का उदय चारित्रधर लब्धिधारी चौदहपूर्वी को ही होता है ।

नारक के जीवों को 1 से 4 गुणस्थानक होते हैं । तीर्थंकर नाम कर्म का बंध सम्यक्त्व की उपस्थिति में ही होता है, अतः मिथ्यात्व गुणस्थानक में उसका बंध नहीं होता है, अतः वहाँ 100 ही प्रकृतियों का बंध होता है ।

दूसरे सास्वादन गुणस्थानक में रहा नारक जीव–नपुंसकवेद, मिथ्यात्व मोहनीय, हुंडक व सेवार्त संघयण-इन चार प्रकृतियों को नहीं बाँधते हैं, क्योंकि इन चार प्रकृतियों का बंध मिथ्यात्व के उदयकाल में होता है । अतः सास्वादन गुणस्थानक में 96 प्रकृतियों का बंध होता है ।

विणु अणछवीस मीसे, बिसयरि सम्मंमि जिणनराउ जुया ।
इय रयणाइसु भंगो, पंकाइसु तित्थयर-हीणो ।।6।।

शब्दार्थ

विणु=बिना	**नराउ जुया=**मनुष्य आयुष्य युत
अणछवीस=अनंतानुंबधी आदि 26 प्रकृतियां	**जुया=**सहित
	इय=इस प्रकार
मीसे=मिश्र	**रयणाइसु=**रत्नप्रभा आदि में
बिसयरि=बहोत्तर	**भंगो=**विकल्प
सम्मंमि=सम्यक्त्व में	**पंकाइसु=**पंक आदि में
जिण=तीर्थंकरनाम कर्म	**तित्थयरहीणो=**तीर्थंकरनाम बिना

भावार्थ : अनंतानुबंधी चतुष्क आदि छब्बीस प्रकृतियों को छोड़कर मिश्र गुणस्थानक में सत्तर (70) तथा तीर्थंकरनाम व मनुष्य आयुष्य जोड़ने पर सम्यक्त्व गुणस्थानक में बहत्तर (72) प्रकृतियों का बंध होता है ।

इस प्रकार नरक गति की यह सामान्य बंधविधि रत्नप्रभा आदि तीन नरक भूमियों के नारकों के चारों गुणस्थानक में भी समझना चाहिए तथा पंकप्रभा आदि नरकों में तीर्थंकर नामकर्म के बिना शेष सामान्य बंधविधि पूर्ववत् समझनी चाहिए ।

विवेचन : मिश्र गुणस्थानक में रहे नारकों को 70 प्रकृतियों का बंध होता है, क्योंकि अनंतानुबंधी कषाय के उदय से बँधनेवाली 25 प्रकृतियाँ- अनंतानुबंधी चतुष्क, मध्यम संस्थान चतुष्क, मध्यम संघयण चतुष्क, अशुभ विहायोगति, नीच गोत्र, स्त्रीवेद, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, स्त्यानर्द्धित्रिक, उद्योत तथा तिर्यंच त्रिक का बंध नहीं होता है ।

तीसरे गुणस्थानक में किसी भी आयुष्य का बंध नहीं होता हैं, अतः मनुष्य आयुष्य भी नहीं बाँधता है ।

इस प्रकार इन 26 प्रकृतियों को कम करने पर 70 प्रकृतियाँ बचती हैं । अतः मिश्र गुणस्थानक में 70 प्रकृतियों का बंध होता है ।

चौथे सम्यक्त्व गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म का भी बंध हो सकता है और मनुष्य आयुष्य का भी । इस प्रकार इन प्रकृतियों को जोडने से चौथे गुणस्थानक में 70 + 2 = 72 प्रकृतियों का बंध होता है ।

चौथे गुणस्थानक में रहे जीव मनुष्य आयुष्य का ही बंध करते हैं । नरक के जीव नरकायु व देवायु का कभी बंध नहीं करते हैं । अनंतानुबंधी कषाय का उदय होने पर नरक के जीव तिर्यंच आयुष्य का बंध कर सकते हैं, परंतु उस कषाय का उदय दो गुणस्थानक तक ही होता है, अतः चौथे गुणस्थानक में सिर्फ मनुष्य आयुष्य का ही बंध होता है ।

इस प्रकार नरकगति में पहले गुणस्थानक में 100 कर्म प्रकृति, दूसरे गुणस्थानक में 96, तीसरे गुणस्थानक में 70 व चौथे गुणस्थानक में 72 प्रकृतियों का बंध सामान्य से कहा गया है ।

गुणस्थानक	बंध.	प्रथम तीन नरक में
सामान्य से	101	वैक्रिय 8, जाति 4, स्थावर 4, आतप, आहारक 2, बिना
1	100	जिननाम बिना (अबंध)
2	96	नपुंसक 4, बिना (नपुं. 4 = नपुंसक, मिथ्यात्व, हुंडक सेवार्त,)
3	70	बंध के अनुसार 25 और मनुष्यायुः (अबंध) बिना ।
4	72	जिननाम और मनुष्यायुः बंध होता है ।

नरक 7 हैं, उनमें प्रथम तीन नरक रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा व वालुका प्रभा में तो इसी प्रकार से बंध होता है ।

अब पंकप्रभा, धूमप्रभा तथा तमःप्रभा इन तीन नरकों में बंध की

प्रकृतियाँ बतलाते है । पंक प्रभा आदि चौथी, पाँचवीं व छठी नरक में रहे नारक चौथे गुणस्थानक में होने पर भी तीर्थंकर नाम कर्म का बंध नहीं करते हैं । अतः उन्हें प्रथम तीन गुणस्थानकों में तो 100, 96 व 70 प्रकृतियों का बंध होता है, परंतु चौथे गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म के बंध का अभाव होने से 71 प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	पंकप्रभा, धूमप्रभा और तमःप्रभा नरक में
सामान्य से	100	जिननाम बिना, जाति 4, स्थावर 4, आतप, आहारक 2, बिना
1	100	जिननाम बिना (अबंध)
2	96	नपुंसक 4, बिना (नपुं. 4 = नपुंसक, मिथ्यात्व, हुंडक सेवार्त,)
3	70	बंध के अनुसार 25 अने मनुष्यायुः (अबंध) बिना ।
4	71	जिननाम बिना और मनुष्यायुः बंध होता है ।

अजिणमणुआउ ओहे, सत्तमिए नरदुगुच्चविणु मिच्छे ।
इगनवइ सासणे, तिरिआउ नपुंस चउवज्जं ।।7।।
अणचउवीस विरहिया, सनरदुगुच्चा य सयरि मीसदुगे ।
सतरसओ ओहि मिच्छे, पज्जतिरिया विणु जिणाहारं ।।8।।

शब्दार्थ

अजिण=तीर्थंकरनाम सिवाय
मणुआउ=मनुष्य आयुष्य
ओहे=ओघ से
सत्तमिए=सातवीं नरक में
नरदुग=मनुष्य द्विक
उच्चविणु=उच्च गोत्र बिना
विणु=बिना
मिच्छे=मिथ्यात्व में
इगनवइ=इक्यानवे
सासणे=सास्वादन में
तिरिआउ=तिर्यंच आयु
नपुंस=नपुंसक
चउवज्जं=चार को छोड़कर
अण=अनंतानुंबंधी
चउवीस=चौबीस
विरहिया=छोड़कर
सनरदुग=मनुष्यद्विक सहित
उच्चा=उच्च गोत्र
सयरि=सौ
मीसदुगे=मिश्रद्विक
सतरसओ=एकसौ सत्रह
ओहि=ओघ
मिच्छे=मिथ्यात्व में
पज्जतिरिया=पर्याप्त तिर्यंच
जिण=तीर्थंकरनाम
आहारं=आहारक

भावार्थ : सातवीं नरक में सामान्य से तीर्थंकरनाम कर्म और मनुष्य आयुष्य का बंध नहीं होता है । मनुष्य द्विक और उच्च गोत्र के बिना शेष प्रकृतियों का मिथ्यात्व गुणस्थानक में बंध होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक में तिर्यंच आयु व नपुंसक चतुष्क के बिना 91 प्रकृतियों का बंध होता है तथा 91 प्रकृतियों में से अनंतानुबंधी चतुष्क आदि 24 प्रकृतियों को कम करने पर और मनुष्य द्विक एवं उच्च गोत्र इन तीन प्रकृतियों को मिलाने पर मिश्र गुणस्थान सम्यक्त्व गुणस्थानक में 70 प्रकृतियों का बंध होता है ।

तिर्यंच गति में पर्याप्त तिर्यंच मिथ्यात्व गुणस्थानक में तीर्थंकरनाम कर्म एवं आहारक द्विक को छोड़ सामान्य से 117 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

विवेचन : छह नरकों के बंध स्वामित्व का वर्णन करने के बाद इन दो गाथाओं में सातवीं नरक एवं पर्याप्त तिर्यंच के बंध स्वामित्व का वर्णन कर रहे हैं ।

सातवीं नरक से निकला हुआ जीव मनुष्य भव को प्राप्त नहीं करता है, अतः वह सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले तो भी मनुष्य आयुष्य का बंध नहीं करता है । तीन के बाद नरक के जीव तीर्थंकर नाम कर्म भी नहीं बाँधते हैं, अतः 7वीं नरक के जीव सामान्य से 99 प्रकृतियों का बंध माना गया है ।

सातवीं नरक के जीव मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्वी तथा उच्च गोत्र का बंध नहीं करते हैं, अतः ये तीन प्रकृतियाँ कम करने पर 99 - 3 = 96 प्रकृतियों का बंध मिथ्यात्व गुणस्थानक में हो सकता है ।

दूसरे सास्वादन गुणस्थानक में तिर्यंच आयु तथा नपुंसक चतुष्क-नपुंसक वेद, मिथ्यात्व, हुंडक व सेवार्त संघयण-इन पाँच का बंध नहीं करते हैं अतः 96 - 5 = 91 प्रकृतियों का ही बंध हो सकता हैं ।

सातवीं नरक के जीव तीसरे व चौथे गुणस्थानक में 70 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

अनंतानुबंधी चतुष्क से लेकर तिर्यंच द्विक तक 24 प्रकृतियाँ अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, न्यग्रोध परिमंडल, सादि, वामन और कुब्ज संस्थान, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्ध नाराच और कीलिका संघयण, अशुभ विहायोगति, नीच गोत्र, स्त्रीवेद, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, निद्रानिद्रा, प्रचला प्रचला, स्त्यानर्द्धि, उद्योत, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी का बंध अनंतानुबंधी कषाय के उदय में ही होता है और अनंतानुबंधी का उदय पहले-दूसरे गुण स्थान में ही होता है ।

91 में से 24 घटाने पर 67 प्रकृतियाँ रहती हैं । उनमें मनुष्य द्विक (मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी) तथा उच्च गोत्र जोड़ने पर 67 + 3 = 70 प्रकृतियों का बंध तीसरे-चौथे गुणस्थानक में होता है ।

प्रश्न : सातवीं नरक के जीव मरकर मनुष्य के रूप में पैदा नहीं होते हैं तो वे मनुष्य द्विक व उच्चगोत्र क्यों बाँधते हैं ?

उत्तर : मनुष्य गति (तथा आनुपूर्वी) और मनुष्य आयुष्य में बड़ा अंतर है । किसी भी गति का आयुष्य बंधा हो तो उस गति में जाना ही पड़ता है, परंतु मनुष्य गति नाम कर्म बंधा हो तो मनुष्य गति में जाना पड़े ऐसा नियम नहीं है । अतः मनुष्यद्विक और उच्चगोत्र का बंध हो सकता है ।

गुणस्थानक	बंध.	तमस्तम:प्रभा नरक में
सामान्य से	99	जिननाम, मनुष्यायु: बिना
1	96	मनुष्य 2, उच्चगोत्र (अबंध) बिना
2	91	नपुंसक 4, तिर्यंचायु: बिना
3	70	तिर्यंचायु बिना बंध के अनुसार 24 बिना अने मनुष्य 2, उच्चगोत्र बंध होता है ।
4	70	तिर्यंचायु बिना बंध के अनुसार 24 बिना अने मनुष्य 2, उच्चगोत्र बंध होता है ।

तिर्यंच गति में बंध स्वामित्व

नरक गति के बंध-स्वामित्व के बाद अब तिर्यंचगति का बंध-स्वामित्व बतलाते हैं-

तिर्यंचों के दो भेद हैं-पर्याप्त तिर्यंच और अपर्याप्त तिर्यंच ।

पर्याप्त तिर्यंच

यहाँ सर्वप्रथम पर्याप्त तिर्यंचों का बंध स्वामित्व कहते हैं ।

तिर्यंच गति में तीर्थंकर नाम कर्म और आहारक द्विक-इन तीन प्रकृतियों का बंध नहीं होता है, अतः सामान्य से तिर्यंचों को 117 प्रकृतियों का बंध होता है ।

तिर्यंच सम्यग्दृष्टि हो तो भी तीर्थंकर नाम कर्म का बंध नहीं करते हैं तथा आहारक द्विक का बंध सर्वविरतिधर आत्मा ही कर सकती है, तिर्यंच में सर्वविरति का अभाव है, अतः आहारक द्विक का बंध नहीं होता है ।

पर्याप्त तिर्यंच को पहले से पांचवें तक के गुणस्थानक और अपर्याप्त तिर्यंच को सिर्फ पहला ही गुणस्थानक होता है ।

विणु निरय सोल सासणि, सुराउ अण एगतीस विणु मीसे ।
ससुराउ सयरि सम्मे, बीयकसाए विणा देसे ।।9।।

शब्दार्थ

विणु=बिना	**ससुराउ=**देव आयु सहित
निरयसोल=नरकद्विक आदि सोलह	**सयरि=**सत्तर
सासणि=सास्वादन में	**सम्मे=**सम्यक्त्व में
सुराउ=देव आयुष्य	**बीयकसाए=**दूसरे कषाय में
अणएगतीस=अनंतानुबंधी आदि 31	**विणा=**बिना
विणु=बिना	**देसे=**देश विरति में
मीसे=मिश्र में	

भावार्थ : सास्वादन गुणस्थान में नरक त्रिक आदि सोलह प्रकृतियों को छोड़कर मिश्र गुणस्थान में देवायु और अनंतानुबंधी चतुष्क आदि 31 को छोड़कर सम्यक्त्व गुणस्थान में देव आयुष्य सहित सत्तर (70) तथा देशविरति गुणस्थान में दूसरे कषाय के बिना 66 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

विवेचन : पर्याप्त तिर्यंचों को दूसरे गुणस्थानक में मिथ्यात्व से बँधनेवाली 16 प्रकृतियों का बंध नहीं होता है ।

नरक त्रिक (नरक गति, नरकानुपूर्वी और नरकायुष्य) जाति चतुष्क (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय), स्थावर चतुष्क (स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण) हुंडक संस्थान, सेवार्त संघयण, आतप नाम, नपुंसकवेद और मिथ्यात्व मोहनीय-इन 16 प्रकृतियों को कम करने से 117 - 16 = 101 प्रकृतियों का बंध होता है । तीसरे गुणस्थान में आयुष्य का बंध नहीं होने से पर्याप्त तिर्यंच देवायु का बंध नहीं होता हैं । तीसरे गुणस्थान में अनंतानुबंधी कषाय का उदय नहीं होने से उसके निमित्त से बँधनेवाली 25 प्रकृतियाँ-

तिर्यंचत्रिक = तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंच आयु ।
स्त्यानर्द्धित्रिक = निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि ।
दुर्भगत्रिक = दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय नाम
अनंतानुबंधी चतुष्क = अनंतानुबंधी, क्रोध, मान, माया, लोभ
मध्यमसंस्थान चतुष्क = न्यग्रोध परिमंडल, सादि, वामन और कुब्ज

मध्यम संघयण चतुष्क = ऋषभ नाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका संघयण

नीच गोत्र, उद्योत नाम, अशुभ विहायोगति और स्त्रीवेद का बंध नहीं करते हैं ।

इसके साथ ही मनुष्य गति योग्य मनुष्यत्रिक (मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्य आयुष्य) औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग और वज्रऋषभ नाराच संघयण इन छह का भी बंध नहीं करते हैं ।

इस प्रकार 1 + 25 + 6 = 32 प्रकृतियों का बंध कम करने पर 101 -32 = 69 प्रकृतियों का बंध होता है ।

अविरत सम्यग्दृष्टि नाम के चौथे गुणस्थानक में देवायु का बंध संभव होने से 69 + 1 = 70 का बंध होता है ।

पाँचवें गुणस्थानक में अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क क्रोध, मान, माया और लोभ का बंध नहीं होने से 70 – 4 = 66 प्रकृतियों का बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	पर्याप्ता तिर्यंच में
सामान्य से	117	जिननाम, आहारक 2, बिना ।
1	117	जिननाम, आहारक 2, बिना ।
2	101	बंध के अनुसार 16 बिना
3	69	बंध के अनुसार 27 और मनुष्य 2, औदारिक 2, प्रथम संघयण बिना ।
4	70	देवायु: का बंध होता है ।
5	66	अप्रत्याख्यानीय बिना

मनुष्य गति मे बंध स्वामित्व

इय चउ गुणेसु वि नरा, परमजया सजिण ओहु देसाइ ।
जिण इक्कारस हीणं, नवसय अपजत्ततिरिअनरा ।।10।।

शब्दार्थ

इय=इस प्रकार
चउ गुणेसु=चार गुणस्थानों में
वि=भी
नरा=मनुष्य
परं=परंतु
अजया=अविरति गुणस्थानक
सजिण=तीर्थंकर नाम सहित
ओहु=ओघ से

देसाई=देशविरति आदि	**नवसय=**एकसौ नौ
जिणइक्कारस=तीर्थंकर नाम आदि 11	**अपजत्त=**अपर्याप्त
हीणं=रहित	**तिरिअनरा=**तिर्यंच-मनुष्य

भावार्थ : पर्याप्त मनुष्य पहले से चौथे गुणस्थानक में तिर्यंच की तरह ही कर्म प्रकृतियों का बंध करते हैं। सिर्फ सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति बाँध सकते हैं-पर्याप्त तिर्यंच नहीं।

पाँचवें से आगे के गुणस्थानकों में कर्मस्तव नाम के दूसरे कर्मग्रंथ में बताए अनुसार कर्म प्रकृतियाँ बाँधते हैं।

अपर्याप्त तिर्यंच व मनुष्य तीर्थंकरनाम आदि 11 प्रकृतियों को छोडकर 109 का बंध करते हैं।

विवेचन :

पर्याप्त मनुष्य

पर्याप्त मनुष्य पहले गुणस्थानक में आहारकद्विक व तीर्थंकर नामकर्म को छोड़कर 117 प्रकृतियों का बंध करते हैं। दूसरे गुणस्थान में 16 प्रकृतियों का अंत हो जाने से 117 – 16 = 101 प्रकृतियों का बंध करते हैं।

तीसरे गुणस्थानक में 32 प्रकृतियाँ कम हो जाने से 69 प्रकृतियों का बंध करते हैं।

चौथे गुणस्थानक में देवायु के साथ तीर्थंकर नामकर्म के बंध की संभावना होने से 69 + 2 = 71 प्रकृतियों का बंध करते हैं।

पाँचवें गुणस्थान में पर्याप्त मनुष्य 67 प्रकृतियों का एवं पर्याप्त तिर्यंच 66 प्रकृतियों का बंध करते है।

पाँचवें गुणस्थानक में अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क कम हो जाता है।

पांचवें गुणस्थानक से आगे के गुणस्थानकों में द्वितीय कर्मग्रंथ के अनुसार सामान्य से जो बंध कहा गया है, वह पर्याप्त मनुष्य को समझना चाहिए, क्योंकि आगे के सभी गुणस्थानक पर्याप्त मनुष्य को ही होते हैं।

छठे गु. में 63, सातवें गु. में 59-58 आठवें गु. में 58, नौवें गु. में 22, 21, 20, 19, 18, दसवें गु. में 17, ग्यारहवें, बारहवे एवं तेरहवे गुणस्थानक में 1, का बंध होता है।

बंध यंत्र

क्रम	गुणस्थानक नाम	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	अबंध
	सामान्य	8	120	5	9	2	26	4	67	2	5	0
1	मिथ्यात्व	8	117	5	9	2	26	4	64	2	5	3
2	सास्वादन	8	101	5	9	2	24	3	51	2	5	19
3	मिश्र	7	74	5	6	2	19	0	36	1	5	46
4	अविरत स.दृ.	8	77	5	6	2	19	2	37	1	5	43
5	देशविरत	8	67	5	6	2	15	1	32	1	5	53
6	प्रमत्तसंयत	8	63	5	6	2	11	1	32	1	5	57
7	अप्रमत्त संयत	8,7	59,58	5	6	1	9	1,0	31	1	5	61/62
8	अपूर्वकरण भाग 1	7	58	5	6	1	9	0	31	1	5	62
	अपूर्वकरण भाग 2	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 3	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 4	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 5	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 6	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 7	7	26	5	4	1	9	0	1	1	5	94
9	अनिवृत्तिकरण भाग 1	7	22	5	4	1	5	0	1	1	5	98
	अनिवृत्तिकरण भाग 2	7	21	5	4	1	4	0	1	1	5	99
	अनिवृत्तिकरण भाग 3	7	20	5	4	1	3	0	1	1	5	100
	अनिवृत्तिकरण भाग 4	7	19	5	4	1	2	0	1	1	5	101
	अनिवृत्तिकरण भाग 5	7	18	5	4	1	1	0	1	1	5	102
10	सूक्ष्मसंपराय	6	17	5	4	1	0	0	1	1	5	103
11	उपशांतमोह	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0	119
12	क्षीणमोह	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0	119
13	सयोगी केवली	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0	119
14	अयोगी केवली	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	120

गुण-स्थानक	प्रकृति	पर्याप्त मनुष्य में बंध स्वामित्व	अबंध प्रकृति
सामान्य से	120		
1	117		आहा.2 जिननाम
2	101	नरक 3, जाति 4, स्थावर 4, नपुंसक 4◆, आतप	
3	74	अनंतानुबंधि 4, मध्यम संघयण 4, मध्यम संस्थान 4, तिर्यंच 3, दुर्भग 3, थीणद्धि 3, स्त्रीवेद, अशुभ विहायोगति, नीचगोत्र, उद्योत	मनुष्यायुष्य और देवायुष्य
4	77	जिननाम, देव और मनुष्यायुष्य का बंध होता है	
5	67	वज्रऋषभनाराच, औदारिक 2, मनुष्य 3, अप्रत्याख्यानीय 4	
6	63	प्रत्याख्यानीय 4	
7	59 / 58	अशाता, शोक, अरति, अस्थिर, अशुभ, अपयश । आहारक 2, का बंध होता है । यहाँ देवायुष्य बांधता हुआ आये तो 59 और देवायुष्य बांध कर आये तो 58	
8/1	58		
8/2 से 6	56	निद्रा 2,	
8/7	26	देव 2, जाति 1, शरीर 4, अंगोपांग 2, वर्ण 4, शुभ विहायोगति, समचतुरस्र सं., प्रत्येक 6, त्रस 9,	
9/1	22	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	
9/2	21	पुरुषवेद	
9/3	20	संज्वलन क्रोध	
9/4	19	संज्वलन मान	
9/5	18	संज्वलन माया	
10	17	संज्वलन लोभ	
11	1	ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5, यश, उच्चगोत्र	
12	1		
13	1		
14	0	शातावेदनीय	

◆ नपुंसक 4 = नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, हुंडक, सेवार्त ।

अपर्याप्त तिर्यंच एवं अपर्याप्त मनुष्य

लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच व लब्धि अपर्याप्त मनुष्य को पहला ही मिथ्यात्व गुणस्थानक होता है ।

लब्धि अपर्याप्त पहले गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म, देवद्विक, वैक्रिय द्विक, आहारक द्विक, देव आयु और नरक त्रिक-इन ग्यारह प्रकृतियों को नहीं बाँधते हैं, अतः 120 – 11 = 109 प्रकृतियों का ही बंध करते हैं ।

गुणस्थानक	बंध.	अपर्याप्त तिर्यंच एवं अपर्याप्त मनुष्य
सामान्य से	109	वैक्रिय 8 आहारक 2, जिननाम बिना
1	109	वैक्रिय 8 आहारक 2, जिननाम बिना

देवगति में बंध स्वामित्व

निरयव्व सुरा नवरं, ओहे मिच्छे इगिंदि तिग सहिआ ।
कप्पदुगे वि य एवं, जिणहीणो जोइ भवणवणे ।।11।।

शब्दार्थ

निरयव्व=नारक की तरह
सुरा=देव
नवरं=परंतु
ओहे=सामान्य से
मिच्छे=मिथ्यात्व में
इगिंदि=एकेन्द्रिय
तिगसहिआ=त्रिक सहित
कप्पदुगे=दो देवलोक में
वि=भी
एवं=इस प्रकार
जिणहीणो=तीर्थंकरनाम छोड
जोइ=ज्योतिष
भवण=भवनपति
वणे=व्यंतर में

भावार्थ : देवों को नरकगति की तरह बंध होता है, परंतु सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में एकेन्द्रिय त्रिक सहित बंध होता है । प्रथम दो देवलोक - सौधर्म व ईशान में इस तरह बंध होता है तथा ज्योतिष, भवनपति और व्यंतर में तीर्थंकर नामकर्म सिवाय बंध होता है ।

विवेचन :

नरक के जीव मरकर देवगति और नरकगति में उत्पन्न नहीं होते हैं, उसी प्रकार देवता भी मरकर देव व नरक गति में पैदा नहीं होते हैं ।

देवों के मुख्य चार भेद हैं-भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक।

बंध स्वामित्व में देवों के 5 विभाग होते हैं-

(1) भवनपति, व्यंतर और ज्योतिषदेव देवता एवं

(2) पहला व दूसरा वैमानिक देवलोक।

इन दो विभाग का बंध-स्वामित्व उपर्युक्त गाथा में बतलाया है।

सौधर्म और ईशान देवलोक के दो देवलोक का बंध नरकगति के समान है, परंतु एकेन्द्रिय त्रिक सहित का बंध होता है।

पहले दो देवलोक तक के देवता मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में भी पैदा होते हैं।

अतः सामान्य से पहले दो देवलोक के देवता एकेन्द्रियत्रिक जोड़ने पर 101 + 3 = 104 प्रकृतियों का बंध करते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानक में तीर्थंकर नामकर्म बंध नहीं होने से 103 प्रकृतियों का बंध करते हैं।

दूसरे गुणस्थानक में मिथ्यात्व के उदय से बँधनेवाली सात प्रकृतियों का बंध नहीं होने से 96 प्रकृतियों का बंध करते हैं।

तीसरे गुणस्थानक में अनंतानुबंधी चतुष्क आदि 26 प्रकृतियों को कम करने से 70 प्रकृतियों का बंध होता है।

चौथे गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म और मनुष्य आयु का बंध होने से 70 + 2 = 72 प्रकृतियों का बंध होता है।

गुणस्थानक	बंध.	वैमानिकः– 1 सौधर्म, 2 इशान
सामान्य से	104	जिननाम बंध होता है, जाति 3, सूक्ष्म 3, आहारक 2, जिननाम, बिना
1	103	वैक्रिय 8, जाति 3, सूक्ष्म 3, आहारक 2, जिननाम, बिना
2	96	नपुंसक 4, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, आतप, बिना
3	70	सामान्य बंध के अनुसार 25 और मनुष्यायुः (अबंध) बिना
4	72	जिननाम और मनुष्यायुः का बंध होता है

भवनपति, व्यंतर और ज्योतिष के देव तीर्थंकर नाम कर्म का बंध नहीं करते हैं, अतः उन्हें सामान्य से बंध योग्य 103 प्रकृतियाँ होती हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थानक में 103 प्रकृतियों का बंध होता है, दूसरे गुणस्थानक में 96, तीसरे गुणस्थानक में 70 व चौथे गुणस्थानक में 71 प्रकृतियों का बंध होता है।

गुणस्थानक	बंध.	भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष
सामान्य से	103	वैक्रिय 8, जाति 3, सूक्ष्म 3, आहारक 2, जिननाम, बिना
1	103	वैक्रिय 8, जाति 3, सूक्ष्म 3, आहारक 2, जिननाम, बिना
2	96	नपुंसक 4, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, आतप,
3	70	सामान्य बंध के अनुसार 25 और मनुष्यायु: (अबंध) बिना
4	71	मनुष्यायु: बंध होता है ।

रयणुव्व सणंकुमाराइ, आणयाइ उज्जोय चउरहिया ।
अपज्जतिरिअव्व नवसयमिगिंदि पुढवीजल तरु विगले ।।12।।

शब्दार्थ

रयणुव्व=रत्नप्रभा की तरह
सणंकुमाराइ=सनतकुमार आदि
आणयाइ=आनत आदि
उज्जोय= उद्योत
चउरहिया=चतुष्क रहित
अपज्ज=अपर्याप्त
तिरिअव्व=तिर्यंच की तरह
नवसयं=एकसौ नौ
इगिंदि=एकेन्द्रिय
पुढवी=पृथ्वीकाय
जल=अप्काय
तरु=वनस्पतिकाय
विगले=विकलेन्द्रिय

भावार्थ : सनतकुमार आदि देवता रत्नप्रभा नारकी की तरह बंध करते हैं ।

आनत आदि देवता उद्योत चतुष्क रहित बंध करते हैं । एकेन्द्रिय पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय और विकलेन्द्रिय जीव अपर्याप्त तिर्यंच की तरह बंध करते हैं ।

विवेचन : (3) तीसरे वैमानिक सनतकुमार से लेकर आठवें आनत तक के देवलोक के देवताओं को रत्नप्रभा नारक की तरह ही पहले से चारों गुणस्थानकों में बंध होता है ।

लेश्या की विशुद्धि के कारण ये देवता मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय या वनस्पतिकाय में उत्पन्न नहीं होते हैं, अतः पहले दो देवलोक की तरह एकेन्द्रियत्रिक का बंध नहीं करते हैं ।

वे सामान्य से 101, मिथ्यात्व में 100, सास्वादन में 96, मिश्र में 70 और अविरत गुणस्थानक में 72 प्रकृतियों का बंध करते हैं ।

गुणस्थानक	बंध.	3 से 8 देवलोक में
सामान्य से	101	वैक्रिय 8, जाति 4, स्थावर 4, आतप, आहारक 2, बिना
1	100	जिननाम बिना (अबंध)
2	96	नपुंसक 4, बिना (नपुं. 4 = नपुंसक, मिथ्यात्व, हुंडक सेवार्त,)
3	70	बंध के अनुसार 25 और मनुष्यायु: (अबंध) बिना ।
4	72	जिननाम और मनुष्यायु: बंध होता है ।

(4) नौवें आनत से ऊपर के देवता मरकर मनुष्य गति में ही जन्म लेते हैं, अत: तिर्यंचगति प्रायोग्य, उद्योत चतुष्क = उद्योत नाम कर्म, तिर्यंच गति तिर्यंचानुपूर्वी और तिर्यंच आयुष्य का बंध नहीं करते हैं ।

अत: आनत से नौ ग्रैवेयक तक के देवता सामान्य से 97, मिथ्यात्व में 96, सास्वादन में 92, मिश्र में 70 व अविरत गुणस्थानक में 72 प्रकृतियों का ही बंध होता हैं ।

गुणस्थानक	बंध.	9 से 12 देवलोक में और 9 ग्रैवेयक में
सामान्य से	97	तिर्यंच 3, और उद्योत बिना बाकी 1 से 3 नरक जैसे
1	96	तिर्यंच 3, और उद्योत बिना बाकी 1 से 3 नरक जैसे
2	92	तिर्यंच 3, और उद्योत बिना बाकी 1 से 3 नरक जैसे
3	70	तिर्यंच 3, और उद्योत बिना बाकी 1 से 3 नरक जैसे
4	72	तिर्यंच 3, और उद्योत बिना बाकी 1 से 3 नरक जैसे

(5) पाँच अनुत्तर में पैदा होनेवाले देवता नियम से सम्यग्दृष्टि होते हैं अत: चौथे गुणस्थानक में उन्हें 72 प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	5 अनुत्तर में	
सामान्य से	72	तिर्यंच 3, और उद्योत बिना	बाकी 1 से 3 नरक जैसे
4	72	तिर्यंच 3, और उद्योत बिना	बाकी 1 से 3 नरक जैसे

5 इन्द्रिय व काय मार्गणा में बंध स्वामित्व

इन्द्रिय मार्गणा के 5 भेद हैं- एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय ।

काय मार्गणा के 6 भेद हैं-पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय ।

इन 11 मार्गणाओं में से प्रथम एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय आदि चार तथा पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय आदि तीन अर्थात् इन 7 मार्गणाओं में अपर्याप्त तिर्यंच के समान सामान्य से 109 प्रकृतियों का बंध होता है। क्योंकि ये जीव भी मरकर देवगति व नरकगति में उत्पन्न नहीं होते हैं, अतः तीर्थंकर नामकर्म, देवगति, देवानुपूर्वी, देव आयुष्य, नरक गति, नरकानुपूर्वी, नरक आयुष्य, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक शरीर व आहारक अंगोपांग इन ग्यारह प्रकृतियों का बंध नहीं करते हैं।

छ नवइ सासणि विणु सुहुमतेर, केइ पुण बिंति चउनवइ।
तिरिय नराऊहिं विणा, तणु पज्जत्तिं न जंति जओ ।।13।।

शब्दार्थ

छ नवइ=छियानवे (96)
सासणि=सास्वादन में
विणु=बिना
सुहुमतेर=सूक्ष्म आदि तेरह
केइ=कुछ
पुण=पुनः
बिंति=कहते हैं
चउनवइ=चोरानवे (94)
तिरिय=तिर्यंच
नराऊहिं=मनुष्य आयुष्य
विणा=बिना
तणुपज्जतिं=शरीर पर्याप्ति
न जंति=पूर्ण नहीं करते हैं
जओ=क्योंकि

भावार्थ : सात मार्गणावाले जीव सूक्ष्म आदि तेरह प्रकृतियों के बिना सास्वादन में 96 प्रकृतियों का बंध करते हैं।

कुछ आचार्यों के मतानुसार तिर्यंच आयुष्य और मनुष्य आयुष्य के बिना सास्वादन में 94 प्रकृतियों का बंध होता है, क्योंकि सास्वादन में वे जीव शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं करते हैं।

विवेचन : एकेन्द्रिय आदि चार तथा पृथ्वीकाय आदि तीन इन सात मार्गणाओं में जीव मिथ्यात्व गुणस्थानक में 109 प्रकृतियों का बंध करते हैं, उसमें से सूक्ष्म नाम कर्म आदि 13 प्रकृति कम करने पर 96 प्रकृतियों का बंध होता है।

कुछ आचार्यों के मत से सास्वादन गुणस्थानक में 94 का ही बंध होता है ।

उनका मत है कि इन सात मार्गणाओं में रहा जीव नया उपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करता है । अतः सास्वादन गुणस्थानक प्राप्त नहीं करता है, परंतु गत भव में उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने के पहले इन सात मार्गणाओं में से किसी भव का आयुष्य बाँध दिया हो, और फिर उपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया हो तो उसका वमन कर चौथे गुणस्थानक से सास्वादन गुणस्थानक में जाय और वहाँ उस भव का आयुष्य पूर्ण कर मृत्यु प्राप्त कर उपर्युक्त सात मार्गणाओं में सास्वादन सम्यक्त्व लेकर जाए तो पूर्व भव से लाया सास्वादन सम्यक्त्व इन सात मार्गणाओं में हो सकता है ।

उस सास्वादन गुणस्थानक का काल सिर्फ छह आवलिका का है । प्रथम आहार पर्याप्ति एक समय में व शेष पर्याप्तियाँ अन्तर्मुहूर्त में पूर्ण होती हैं । सास्वादन गुणस्थानक का काल तो अल्प होने से शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के पहले ही वह गुणस्थानक चला जाता है । परभव का आयुष्य तो आहार-शरीर व इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद ही बँधता है, अतः जब सास्वादन गुणस्थानक हो तब आयुष्य बंध नहीं व आयुष्य बंधे तब सास्वादन का काल पूर्ण हो जाता है, अतः इन सात मार्गणाओं में तिर्यंच व मनुष्य के आयुष्य का बंध नहीं होता है ।

सूक्ष्म निगोद में भी जघन्य क्षुल्लक भव 256 आवलिका का होता है उसमें दो तृतीयांश भाग बीतने पर ही आयुष्य का बंध होता है । जब कि सास्वादन गुणस्थानक का काल तो छह आवलिका का ही है । अतः इस गुणस्थानक में आयुष्य बंध नहीं होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	इन्द्रिय:– एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय काय:– पृथ्वी, अप्, वनस्पति.
सामान्य से	109	वैक्रिय 8, आहारक 2, जिननाम, बिना
1	109	वैक्रिय 8, आहारक 2, जिननाम, बिना
2	96	सूक्ष्म 3, विकल 3, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, आतप, नपुंसक वेद, मिथ्यात्व, हुंडक, सेवार्त
2	94	(मतान्तर से मनुष्यायुः तिर्यंचायुः बिना)

ओहु पणिंदि तसे, गइतसे जिणिक्कार नरतिगुच्च विणा ।
मणवयजोगे ओहो, उरले नरभंगु तम्मिस्से ।।14।।

शब्दार्थ

ओहु=ओघबंध	**विणा=**बिना
पणिंदि=पंचेन्द्रिय	**मणवयजोगे=**मन वचन योग में
तसे=त्रस मार्गणा	**ओहो=**सामान्य बंध
गइतसे=गतित्रस में	**उरले=**औदारिक मार्गणा में
जिणिक्कार=तीर्थंकर नाम आदि	**नरभंगु=**मनुष्य की तरह
नरतिगुच्च=मनुष्य त्रिक-उच्च गोत्र	**तम्मिस्से=**उसके मिश्र में

भावार्थ :

पंचेन्द्रिय जाति और त्रस काय मार्गणा में सामान्य से ओघ बंध होता है ।

गति त्रस (तेउकाय-वायुकाय) में जिननाम आदि ग्यारह तथा मनुष्य त्रिक व उच्चगोत्र बिना शेष 105 का बंध होता है ।

मन योग व वचन योग में ओघ से बंध होता है । औदारिक काययोग में मनुष्य के समान बंध होता है । औदारिक मिश्र काययोग में आगे कहते हैं ।

विवेचन :

पंचेन्द्रिय जाति

जाति मार्गणा में एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के बंध का वर्णन हो गया, अब पंचेन्द्रिय जाति का वर्णन करते हैं । पंचेन्द्रिय जाति तथा काय मार्गणा में त्रस काय में दूसरे कर्मग्रंथ में सामान्य से बताए बंध के अनुसार बंध होता है । (अर्थात् सामान्य से 120, मिथ्यात्व में 117, सास्वादन में 101, मिश्र में 74, अविरत में 77, देशविरति में 67, प्रमत्त में 58-59, अपूर्व करण में 58-56-26 अनिवृत्तिकरण में 22-21-20-19-18 सूक्ष्म संपराय में 17, उपशांत मोह, क्षीण मोह व सयोगी गुणस्थानक में 1 प्रकृति का बंध होता है ।)

गुण-स्थानक	बंध	पंचेन्द्रिय जाति	अबंध प्रकृति
सामान्य से	120		
1	117		आहा.2 जिननाम
2	101	नरक 3, जाति 4, स्थावर 4, नपुंसक 4◆, आतप	
3	74	अनंतानुबंधि 4, मध्यम संघयण 4, मध्यम संस्थान 4, तिर्यंच 3, दुर्भग 3, थीणद्धि 3, स्त्रीवेद, अशुभ विहायोगति, नीचगोत्र, उद्योत	मनुष्यायुष्य और देवायुष्य
4	77	जिननाम, देव और मनुष्यायुष्य का बंध होता है	
5	67	वज्रऋषभनाराच, औदारिक 2, मनुष्य 3, अप्रत्याख्यानीय 4	
6	63	प्रत्याख्यानीय 4	
7	59 / 58	अशाता, शोक, अरति, अस्थिर, अशुभ, अपयश । आहारक 2, का बंध होता है । यहाँ देवायुष्य बांधता हुआ आये तो 59 और देवायुष्य बांध कर आये तो 58	
8/1	58		
8/2 से 6	56	निद्रा 2,	
8/7	26	देव 2, जाति 1, शरीर 4, अंगोपांग 2, वर्ण 4, शुभ विहायोगति, समचतुरस्र सं., प्रत्येक 6, त्रस 9,	
9/1	22	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	
9/2	21	पुरुषवेद	
9/3	20	संज्वलन क्रोध	
9/4	19	संज्वलन मान	
9/5	18	संज्वलन माया	
10	17	संज्वलन लोभ	
11	1	ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5, यश, उच्चगोत्र	
12	1		
13	1		
14	0	शातावेदनीय	

◆ नपुंसक 4 = नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, हुंडक, सेवार्त ।

गतित्रस

तेउकाय और वायुकाय वास्तव में स्थावर ही कहलाते हैं फिर भी उन्हें अनिच्छा से गति होने के कारण वे गतित्रस कहलाते हैं ।

ये गतित्रस मरकर सिर्फ तिर्यंच गति में ही जन्म लेते हैं । अन्य स्थावर मरकर मनुष्य गति में भी आ सकते हैं, परंतु इनके लिए निषेध है ।

ये गतित्रस एकेन्द्रिय होने के कारण सम्यक्त्व व संयम भी प्राप्त नहीं करते हैं, अतः वे जिननाम आदि 11 एवं मनुष्यत्रिक व उच्च गोत्र का भी बंध नहीं करते हैं, अतः वे मिथ्यात्व में सिर्फ 120 - 15 = 105 प्रकृतियों का ही बंध करते हैं ।

गुणस्थानक	बंध.	तेउकाय, वाउकाय
सामान्य से	105	वैक्रिय 8, आहारक 2, जिननाम, मनुष्य 3, उच्चगोत्र बिना
1	105	वैक्रिय 8, आहारक 2, जिननाम, मनुष्य 3, उच्चगोत्र बिना

6 योग मार्गणा में बंध-स्वामित्व

योग के मुख्य तीन भेद हैं-मनोयोग, वचनयोग और काययोग ।

मनोयोग और वचनयोग के 4-4 भेद है, जबकि काययोग के 7 भेद हैं ।

मनोयोग और मनोयोग सहित वचनयोग में 1 से 13 तक गुणस्थानक होते हैं । उनमें दूसरे कर्मग्रंथ के अनुसार सामान्य से जो बंध योग्य प्रकृतियाँ बतलाई हैं, वे समझनी चाहिए ।

(अर्थात् सामान्य से 120, मिथ्यात्व में 117, सास्वादन में 101, मिश्र में 74, अविरत में 77, देशविरति में 67, प्रमत्त में 58-59, अपूर्व करण में 58-56-26 अनिवृत्तिकरण में 22-21-20-19-18 सूक्ष्म संपराय में 17, उपशांत मोह, क्षीण मोह व सयोगी गुणस्थानक में 1 प्रकृति का बंध होता है ।)

गुण-स्थानक	बंध	मनोयोग और मनोयोग सहित वचनयोग में बंध स्वामित्व	अबंध प्रकृति
सामान्य से	120		
1	117		आहा.2 जिननाम
2	101	नरक 3, जाति 4, स्थावर 4, नपुंसक 4◆, आतप	
3	74	अनंतानुबंधि 4, मध्यम संघयण 4, मध्यम संस्थान 4, तिर्यंच 3, दुर्भग 3, थीणद्धि 3, स्त्रीवेद, अशुभ विहायोगति, नीचगोत्र, उद्योत	मनुष्यायुष्य और देवायुष्य
4	77	जिननाम, देव और मनुष्यायुष्य का बंध होता है	
5	67	वज्रऋषभनाराच, औदारिक 2, मनुष्य 3, अप्रत्याख्यानीय 4	
6	63	प्रत्याख्यानीय 4	
7	59/58	अशाता, शोक, अरति, अस्थिर, अशुभ, अपयश । आहारक 2, का बंध होता है । यहाँ देवायुष्य बांधता हुआ आये तो 59 और देवायुष्य बांध कर आये तो 58	
8/1	58		
8/2 से 6	56	निद्रा 2,	
8/7	26	देव 2, जाति 1, शरीर 4, अंगोपांग 2, वर्ण 4, शुभ विहायोगति, समचतुरस्र सं., प्रत्येक 6, त्रस 9,	
9/1	22	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	
9/2	21	पुरुषवेद	
9/3	20	संज्वलन क्रोध	
9/4	19	संज्वलन मान	
9/5	18	संज्वलन माया	
10	17	संज्वलन लोभ	
11	1	ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5, यश, उच्चगोत्र	
12	1		
13	1		

◆ नपुंसक 4 = नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, हुंडक, सेवार्त ।

मनोयोग रहित वचनयोग में विकलेन्द्रिय के समान और मनो-वचन रहित सिर्फ काययोग में एकेन्द्रिय के समान बंध-स्वामित्व समझना चाहिए ।

विकलेन्द्रिय और एकेन्द्रिय के समान में क्रमशः सामान्य से 109, मिथ्यात्व में 109, सास्वादन में 96 अथवा 94 का बंध बतलाया है ।

गुण-स्थानक	बंध	इन्द्रिय:– एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय काय:– पृथ्वी, अप्, वनस्पति.
सामान्य से	109	वैक्रिय 8, आहारक 2, जिननाम, बिना
1	109	वैक्रिय 8, आहारक 2, जिननाम, बिना
2	96	सूक्ष्म 3, विकल 3, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, आतप, नपुंसक वेद, मिथ्यात्व हुंडक, सेवार्त
2	94	(मतान्तर से मनुष्यायु: तिर्यंचायु: बिना)

औदारिक-मिश्र-काययोग

आहार छग विणोहे चउदस सउ मिच्छि जिणपणगहीणं ।
सासणि चउनवइ विणा, तिरिअनराऊ सुहुमतेर ।।15।।

शब्दार्थ

आहार छग=आहारक षट्क
विणोहे=बिना ओघ से
चउदस सउ=एक सौ चौदह
मिच्छि=मिथ्यात्व में
जिण पणग=जिन पंचक
हीणं=हीन
सासणि=सास्वादन में
चउनवइ=चौरानवे
तिनिअनर=मनुष्य तिर्यंच
आऊ=आयुष्य
सुहुमतेर=सूक्ष्म तेरह

भावार्थ : औदारिक मिश्रकाय योग में आहारक षट्क के बिना सामान्य से 114 प्रकृतियों का बंध होता है ।

तीर्थंकर नाम कर्म आदि पाँच प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व में 109 का बंध होता है और सास्वादन में मनुष्य-तिर्यंच आयुष्य तथा सूक्ष्म आदि तेरह के बिना 94 प्रकृतियों का बंध होता है ।

विवेचन :

जन्म के प्रथम समय में जीव कार्मणयोग द्वारा आहार ग्रहण करता है,

उसके बाद औदारिक-काय-योग प्रारंभ होता है, वह योग शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक कार्मण के साथ मिश्र होता है ।

केवली समुद्घात में दूसरे, छठे व सातवें समय में भी कार्मण के साथ औदारिक-मिश्रकाय योग होता है ।

औदारिक-मिश्र-काययोग मनुष्य व तिर्यंचों को अपर्याप्त अवस्था में व केवली समुद्घात समय होता है ।

इसमें पहला, दूसरा, चौथा व तेरहवा गुणस्थानक होता है ।

औदारिक-मिश्रकाययोग में आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरक आयु इन छह को छोड़ 114 का बंध होता है ।

आहारक द्विक का बंध सातवें गुणस्थान में तथा देवायु व नरकत्रिक का बंध पर्याप्ति पूर्ण होने पर ही होता है ।

औदारिक-मिश्र-काययोग में मिथ्यात्व गुणस्थान में जिन पंचक (तीर्थंकर नाम कर्म, देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग) को छोड़ 109 का ही बंध होता है ।

दूसरे गुणस्थानक में मिथ्यात्व के उदय से बँधनेवाली सूक्ष्मत्रिक से लेकर सेवार्त संघयण तक 13 प्रकृतियों का बंध नहीं होता है । इसमें मनुष्य व तिर्यंच आयु का भी बंध नहीं होता है–अतः 109 में से 15 प्रकृति कम करने पर 94 प्रकृतियों का बंध होता है ।

अण चउवीसाइ विणा, जिण पणजुअ सम्मि जोगिणो सायं ।
विणु तिरिनराउ कम्मे वि, एवमाहारदुगि ओहो ।।16।।

शब्दार्थ

अणचउवीसाइ=अनंतानुबंधी चौबीस आदि
विणा=बिना
जिण पण जुअ=तीर्थंकरनाम आदि पाँच युक्त
सम्मि=सम्यक्त्व गुणस्थानक में
जोगिणो=सयोगी गुणस्थानक
सायं=शाता वेदनीय
विणु=बिना
तिरिनराउ=तिर्यंच, मनुष्य आयुष्य
कम्मेवि=कार्मण काय योग में
एवं=इस प्रकार
आहारदुगि=आहारक द्विक
ओहो=ओघबंध

भावार्थ : औदारिक-मिश्र-काययोग में चौथे गुणस्थानक में अनंतानुबंधी आदि 24 बिना तथा तीर्थंकर नाम कर्म आदि पाँच युक्त 75 प्रकृतियों का बंध होता है ।

सयोगी गुणस्थानक में सिर्फ एक शाता वेदनीय का बंध होता है ।

कार्मण-काययोग में भी तिर्यंच व मनुष्य आयुष्य के बिना इसी प्रकार बंध होता है । आहारक के दो योग में भी ओघबंध होता है ।

विवेचन : औदारिक-मिश्र-काययोग में सास्वादन में 94 का बंध होता है-चौथे सम्यक्त्व गुणस्थानक में अनंतानुबंधी से तिर्यंच द्विक तक 24 प्रकृतियों को कम करना चाहिए, क्योंकि वे सब प्रकृतियाँ अनंतानुबंधी से संबंधित है, अनंतानुबंधी का उदय दो गुणस्थानक तक ही होता है ।

इस गुणस्थानक में तीर्थंकर-नामकर्म, देवद्विक और वैक्रियद्विक का बंध संभव होने से कुल 75 का बंध होता है ।

तेरहवें गुणस्थानक में केवली-समुद्घात के समय दूसरे, छठे व सातवें समय में सिर्फ एक शाता-वेदनीय का ही बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	औदारिक-मिश्र-काययोग
सामान्य से	114	दैवायु: आहारक 2, नरक 3 बिना.
1	109	देव 2, वैक्रिय 2, जिननाम बिना (अबंध)
2	94	नपुंसक 4, जाति 4, स्थावर 4, आतप, मनुष्यायु:, तिर्यंचायु:, बिना.
4	75	सामान्य बंध जैसे तिर्यंचायु बिना 24 और देव 2, वैक्रिय 2, जिननाम बंध होता है
	70	मनु. 5 बिना (मनु. 5 = मनु. 2, औदा. 2, वज्रऋषभनाराय) (ये संभव है)
13	1	मात्र शातावेदनीय

कार्मण काययोग में बंध स्वामित्व

कार्मण-काययोग भवांतर में जाते समय अंतराल की विग्रह गति में तथा जन्म के पहले समय में होता है ।

कार्मण-काययोग में जीव को पहला, दूसरा, चौथा व तेरहवाँ ये चार गुणस्थानक होते है । इनमें से तेरहवाँ गुणस्थानक केवली भगवंत को केवली समुद्घात के समय तीसरे, चौथे व पाँचवें समय में होता है तथा शेष तीन गुणस्थानक अंतराल गति में व जन्म के प्रथम समय में होता है ।

इस कार्मण-काययोग मार्गणा में सामान्य से तथा गुणस्थानकों के समय औदारिक-मिश्र-काययोग के समान बंध स्वामित्व समझना चाहिए । किंतु इतना फर्क है कि इसमें तिर्यंच आयु व मनुष्य आयु का बंध नहीं हो सकता है ।

गुणस्थानक	बंध.	कार्मण काययोग
सामान्य से	112	नरक 3, आयु: 3, आहारक 2, बिना
1	107	देव 2, वैक्रिय 2, जिननाम (अबंध) बिना
2	94	स्थावर 4, जाति 4, नपुंसक 4, आतप
4	75	तिर्यंचायु: बिना सामान्य बंध जैसे 24 बिना और देव 2, वैक्रिय 2, जिननाम बंध होता है
13	1	मात्र शतावेदनीय

आहारक एवं आहारक मिश्र काययोग

आहारक-काययोग और आहारक-मिश्र-काययोग ये दोनों योग छठे गुणस्थान में होते हैं । छठे गुणस्थानक के समान इन दोनों मार्गणाओं में 63 प्रकृतियों का बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	आहारक मिश्र काययोग
सामान्य से	63	सामान्य बंध जैसे
6	63	सामान्य बंध जैसे

प्रमत्त व अप्रमत्त नाम के छठे व सातवें गुणस्थानक में आहारक काययोग होता है ।

आहारक शरीर का प्रारंभ करते समय वह औदारिक के साथ मिश्र होता है, अर्थात् आहारक मिश्र और आहारक इन दोनों योगों में छठा गुणस्थानक होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	आहारक काययोग
सामान्य से	65	आहारक 2, बंध होता है । बाकी सब सामान्य बंध जैसे
6	63	सामान्य बंध जैसे
7	59	सामान्य बंध जैसे
	57	(मतान्तर:पंचसंग्रह के मत से) आहारक 2, बिना

सुरओहो वेउव्वे, तिरियनराउ रहिओ अ तम्मिस्से ।
वेयतिगाइम बिअ तिअ, कसाय नव दु चउ पंच गुणा ।।17।।

शब्दार्थ

सुर ओहो=देव की तरह सामान्य से	**आइम=**प्रथम
वेउव्वे=वैक्रिय काययोग में	**बियतिय=**दूसरा तीसरा
तिरिय=तिर्यंच	**कसाय=**कषाय
नराउ=मनुष्य आयुष्य	**नव=**नौ
रहिओ=रहित	**दु=**दो
तम्मिस्से=वैक्रिय मिश्र में	**चउपंच=**चार-पाँच
वेयतिग=वेदत्रिक	**गुणा=**गुणस्थानक में

भावार्थ : वैक्रिय-काययोग में देवगति की तरह सामान्य से बंध होता है । वैक्रिय- मिश्र-काययोग में तिर्यंच आयुष्य और मनुष्य आयुष्य रहित बंध होता है । वेदत्रिक प्रथम, द्वितीय और तृतीय कषाय में क्रमशः नौ, दो, चार और पाँच गुणस्थानक होते हैं ।

विवेचन :

वैक्रिय एवं वैक्रिय मिश्र काययोग

वैक्रिय-काययोग में देव गति की तरह बंध होता है । यद्यपि नारक जीवों को भी जन्म से मृत्यु तक यह योग होता है, परंतु नारक की अपेक्षा देवता एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप ये तीन प्रकृतियाँ अधिक बाँधते हैं ।

सामान्य से 104, मिथ्यात्व में 103, सास्वादन में 96, मिश्र में 70 तथा अविरति गुणस्थानक में 72 का बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	वैक्रिय काययोग–सौधर्म-इशान जैसे बंध
सामान्य से	104	जिननाम बंध होता है, जाति 3, सूक्ष्म 3, आहारक 2, जिननाम, बिना
1	103	वैक्रिय 8, जाति 3, सूक्ष्म 3, आहारक 2, जिननाम, बिना
2	94	नपुंसक 4, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, आतप, बिना
3	70	सामान्य बंध के अनुसार 25 और मनुष्यायुः (अबंध) बिना
4	72	जिननाम और मनुष्यायुः का बंध होता है

वैक्रिय-मिश्र-काययोग में भी देवगति की तरह बंध होता है । परंतु उसमें तिर्यंच आयुष्य और मनुष्य आयुष्य का बंध नहीं होता है ।

देव व नारकी को वैक्रिय-मिश्र काययोग उत्पत्ति के दूसरे समय से छह पर्याप्तियाँ पूर्ण न हों तब तक कार्मण के साथ मिश्र योग होता है ।

वैक्रिय-मिश्र-काययोग में देव-नारक को तीसरा मिश्र गुणस्थानक नहीं होता है । वैक्रिय-मिश्र-काययोग में आयुष्य का बंध नहीं होता है ।

अपर्याप्त अवस्था में मिश्र गुणस्थानक नहीं होता है । पर्याप्त अवस्था में मिथ्यात्व से सम्यक्त्व की प्राप्ति समय मिश्र गुणस्थानक हो सकता है, परंतु उस समय वैक्रिय-काययोग होता हैं, वैक्रिय-मिश्र-काययोग नहीं ।

वैक्रिय-मिश्र-काययोग में सामान्य से 102, मिथ्यात्व में 101, सास्वादन में 94 व अविरत में 71 का बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	वैक्रिय-मिश्र-काययोग
सामान्य से	102	वैक्रिय 8, विकल 3, सूक्ष्म 3, आहारक 2, तिर्यंचायु, मनुष्यायुः बिना.
1	101	जिननाम बिना (अबंध)
2	94	नपुंसक 4, एकेन्द्रिय 3 (एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, आतप) बिना
4	71	तिर्यंचायुः बिना सामान्य बंध जैसे 24 बिना और जिननाम बंध होता है ।

7 वेद मार्गणा में बंध स्वामित्व

वेद के दो प्रकार हैं–द्रव्यवेद और भाववेद । पुरुष आदि शरीर की रचना को द्रव्य वेद कहते हैं, जो नामकर्म जन्य है वह तेरहवें गुणस्थानक तक होता है ।

भाववेद मोहनीय कर्मजन्य है, वह नौवें गुणस्थानक तक होता है, उसके आगे मोह का उपशम या क्षय हो जाने से भाववेद नहीं होता है ।

तीनों वेद में सामान्य से 120, प्रथम गुणस्थानक में 117, दूसरे में 101, तीसरे में 74, चौथे में 77, पाँचवें में 67, छठे में 63,सातवें में 58-59, आठवें में 58, 56 व 26 तथा नौवें में 22 का बंध होता है ।

वेद के उदयवाले जीवों में सम्यक्त्व और चारित्र हो सकता है, अतः तीर्थंकर-नामकर्म और आहारक-द्विक का भी बंध संभव है ।

वेद का उदय नौवें गुणस्थानक के पहले भाग तक होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद
सामान्य से	120	'सामान्य बंध जैसा'
1	117	'सामान्य बंध जैसा'
2	101	'सामान्य बंध जैसा'
3	74	'सामान्य बंध जैसा'
4	77	'सामान्य बंध जैसा'
5	67	'सामान्य बंध जैसा'
6	63	'सामान्य बंध जैसा'
7	59/58	'सामान्य बंध जैसा'
8	58/56	'सामान्य बंध जैसा'
9	26/22	'सामान्य बंध जैसा'

8 कषाय-मार्गणा में बंध स्वामित्व

अनंतानुबंधी कषाय का उदय पहले और दूसरे गुणस्थानक में ही होता है। वहाँ न सम्यक्त्व होता है और न ही चारित्र, अतः यहाँ तीर्थंकर नामकर्म व आहारक द्विक का बंध नहीं होने से सामान्य से पहले गुणस्थानक में 117 व दूसरे में 101 प्रकृतियों का बंध होता है।

गुणस्थानक	बंध.	अनंतानुबंधि 4 कषाय
सामान्य से	117	आहारक 2, जिननाम बिना
1	117	सामान्य बंध जैसे
2	101	सामान्य बंध जैसे

अप्रत्याख्यानीय 4 कषाय का उदय एक से चार गुणस्थानक तक होता है, यहाँ सम्यक्त्व हो सकता है परंतु चारित्र का अभाव होने से आहारक द्विक का बंध नहीं होता है, परंतु तीर्थंकर नाम कर्म का बंध हो सकता है।

यहाँ सामान्य से 118, प्रथम गुणस्थानक में 117, दूसरे में 101, तीसरे में 74 व चौथे में 77 प्रकृतियों का बंध होता है।

गुणस्थानक	बंध.	अप्रत्याख्यानीय 4 कषाय
सामान्य से	118	आहारक 2, बिना
1	117	जिननाम बिना सामान्य बंध जैसे
2	101	सामान्य बंध जैसे
3	74	सामान्य बंध जैसे
4	77	सामान्य बंध जैसे

प्रत्याख्यानीय 4 कषाय का उदय पाँचवें गुणस्थानक तक होता है, यहाँ भी सर्वविरति चारित्र का अभाव होने से आहारक द्विक का बंध नहीं होता है । परंतु सम्यक्त्व होने से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध हो सकता है । यहाँ सामान्य से 118, पहले गुणस्थानक में 117, दूसरे में 101, तीसरे में 74, चौथे में 77 एवं पाँचवें में 67 प्रकृतियों का बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	प्रत्याख्यानीय 4 कषाय
सामान्य से	118	आहारक 2, बिना
1	117	सामान्य बंध जैसे
2	101	सामान्य बंध जैसे
3	74	सामान्य बंध जैसे
4	77	सामान्य बंध जैसे
5	67	सामान्य बंध जैसे

संजलणतिगे नव दस, लोभे चउ अजइ दुति अनाणतिगे ।
बारस अचक्खु चक्खुसु, पढमा अहखाय चरिमचऊ ।।18।।

शब्दार्थ

संजलणतिगे=संज्वलन त्रिक में
नव=नौ
दस=दस
लोभे=लोभ में
चउ=चार
अजइ=अविरति
दुति=दो या तीन
अनाणतिगे=अज्ञानत्रिक में
बारस=बारह गुणस्थानक
अचक्खु=अचक्षुदर्शनावरण
चक्खुसु=चक्षु दर्शनावरण
पढमा=प्रथम के
अहखाय=यथाख्यात
चरिम चऊ=अंतिम चार

भावार्थ : संज्वलन त्रिक में 9, लोभ में 10, अविरति चारित्र में 4, अज्ञानत्रिक में 2, चक्षु-अचक्षुदर्शन में पहले बारह, यथाख्यात चारित्र में अंतिम चार गुणस्थानक होते हैं ।

विवेचन : संज्वलन क्रोध, मान और माया का उदय नौवें गुणस्थानक तक तथा संज्वलन लोभ का उदय दसवे गुणस्थानक तक होता है ।

दूसरे कर्मग्रंथ में जो सामान्य से बंध-स्वामित्व बताया है, वह इनमें नौवे-दसवे गुणस्थानक तक होता है ।

संज्वलन क्रोध, मान व माया में सामान्य से 120 एवं पहले से नौवें गुणस्थानक तक क्रमशः 117, 101, 74, 77, 67, 63, 59, 58, 58, 56, 26 और 22 प्रकृति का बंध होता है ।

संज्वलन लोभ दसवें गुणस्थानक में होता है, वहाँ 17 प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	संज्वलन 4 कषाय
सामान्य से	120	सामान्य बंध जैसे
1	117	सामान्य बंध जैसे
2	101	सामान्य बंध जैसे
3	74	सामान्य बंध जैसे
4	77	सामान्य बंध जैसे
5	67	सामान्य बंध जैसे
6	63	सामान्य बंध जैसे
7	59 58	सामान्य बंध जैसे
8	58 56 26	सामान्य बंध जैसे
9	22	सामान्य बंध जैसे
10	17	सामान्य बंध जैसे

9 ज्ञान, संयम और दर्शन मार्गणा में बंध स्वामित्व

अविरति

संयम मार्गणा में प्रतिपक्षी अविरति का भी स्वीकार किया है-इसके 7 भेद हैं–

(1) सामायिक (2) छेदोपस्थापनीय (3) परिहार विशुद्धि (4) सूक्ष्म संपराय (5) यथाख्यात (6) देश विरति (7) अविरति ।

यहाँ सर्वप्रथम अविरति का बंध स्वामित्व बतलाते हैं–

अविरति का अर्थ है-सम्यक्त्व है, किंतु चारित्र नहीं है । इसमें चार गुणस्थानक होते हैं-सम्यक्त्व का अस्तित्व होने से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध हो सकता हैं परंतु आहारक द्विक का नहीं । अतः यहाँ सामान्य से 118, पहले गुणस्थानक में 117, दूसरे में 101, तीसरे में 74 व चौथे में 77 प्रकृतियों का बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	अविरति
सामान्य से	118	आहारक 2, बिना
1	117	सामान्य बंध जैसे
2	101	सामान्य बंध जैसे
3	74	सामान्य बंध जैसे
4	77	सामान्य बंध जैसे

अज्ञानत्रिक

ज्ञान मार्गणा में 5 ज्ञान के साथ 3 अज्ञान का भी समावेश किया है ।

यहाँ सर्वप्रथम अज्ञानत्रिक का बंध स्वामित्व बतलाते हैं ।

अज्ञान त्रिक में पहले दो या तीन गुणस्थानक होते हैं । अज्ञान का कारण मिथ्यात्व हैं । अतः यहाँ सामान्य से तीर्थंकर नाम कर्म व आहारक द्विक कम हो जाने से पहले गुणस्थानक में 117, दूसरे में 101 व तीसरे में 74 प्रकृतियों का बंध होता है । तीसरे गुणस्थानक में जीव की दृष्टि सर्वथा शुद्ध या सर्वथा अशुद्ध नहीं होती है । मिश्र गुणस्थानक में ज्ञान भी मिश्र रूप होता है । कुछ अंश में ज्ञान व कुछ अंश में अज्ञान होता है ।

इस दृष्टि में शुद्धता अधिक हो तो ज्ञान व अशुद्धता अधिक हो तो अज्ञान माना जाता है ।

जो जीव पहले से तीसरे गुणस्थानक में आता है, उसमें अशुद्धि विशेष होती है और जो चौथे से तीसरे गुणस्थानक में आता है, उसमें सम्यक्त्व का अंश होने से विशुद्धि विशेष होती है, अतः विशुद्धि हो तो ज्ञान एवं अशुद्धि हो तो अज्ञान माना जाता है ।

इसी अपेक्षा से अज्ञान में दो या तीन गुणस्थानक माने जाते है ।

इस प्रकार अज्ञान में तीन गुणस्थानक होते हैं। वहाँ सामान्य से 117, मिथ्यात्व में 117, सास्वादन में 101 व तीसरे मिश्र गुणस्थानक में 74 प्रकृतियों का बंध होता है।

गुणस्थानक	बंध.	मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, विभंगज्ञान
सामान्य से	117	आहारक 2, जिननाम बिना सामान्य बंध जैसे
1	117	सामान्य बंध जैसे
2	101	सामान्य बंध जैसे
3	47	सामान्य बंध जैसे

चक्षु और अचक्षु दर्शन

चक्षु और अचक्षु दर्शन में एक से बारह गुणस्थानक होते हैं। ये दोनों क्षायोपशमिक भाव हैं और क्षायोपशमिक भाव बारह गुणस्थानक तक होता है। इनमें बंधस्वामित्व दूसरे कर्म ग्रंथ के निर्देशानुसार समझना चाहिए।

यथाख्यात चारित्र

यथाख्यात चारित्र में 11 से 14 तक 4 गुणस्थानक होते हैं। चौदहवें में योग का भी सर्वथा अभाव होने से कर्म का सर्वथा बंध नहीं होता है। 11 से 13 तक योग का सद्भाव होने से सिर्फ एक प्रकृति-साता वेदनीय का बंध होता है।

गुणस्थानक	बंध.	यथाख्यात चारित्र
सामान्य से	1	सामान्य बंध जैसे
11	1	सामान्य बंध जैसे
12	1	सामान्य बंध जैसे
13	1	सामान्य बंध जैसे
14	0	सामान्य बंध जैसे

मणनाणि सग जयाई, समइयच्छेअ चउ दुन्नि परिहारे।
केवलदुगि दो चरमा, ऽजयाइ नव मइसुओहि दुगे ।।19।।

शब्दार्थ

मण नाणि=मनःपर्यवज्ञान में
सग=सात गुणस्थानक
जयाई=प्रमत्त आदि
समइयच्छेअ=सामायिक-छेदोपस्थापनीय
चउ=चार

दुन्नि=दो
परिहारे=परिहारविशुद्धि में
केवलदुगि=केवलद्विक
दो=दो गुणस्थानक
चरम=अंतिम
अजयाइ=अविरति आदि
नव=नौ गुणस्थानक
मइसुओहि=मति-श्रुत-अवधि
दुगे=द्विक में

भावार्थ : मनः पर्यवज्ञान में प्रमत्त से सात गुणस्थानक; सामायिक; छेदोपस्थापनीय में चार गुणस्थानक; परिहारविशुद्धि में दो गुणस्थानक; केवलद्विक में अंतिम दो गुणस्थानक तथा मति-श्रुत ज्ञान व अवधिद्विक में अविरति आदि नौ गुणस्थानक होते हैं ।

विवेचन :

मनः पर्यवज्ञान

मनः पर्यवज्ञान भी एक विशिष्ट लब्धि है, इसकी प्राप्ति 7 वें गुण-स्थानक में होती है, परंतु मनःपर्यवज्ञान होने के बाद आत्मा छठे गुणस्थानक में आ सकती है अतः मनःपर्यवज्ञान छठे गुणस्थानक में भी रहता है ।

मनःपर्यवज्ञान छठे से बारहवें गुणस्थानक में होता है । तेरहवें गुणस्थानक में क्षायिक भाव का ही ज्ञान होता है, जबकि मनःपर्यवज्ञान क्षायोपशमिक है, अतः बारहवें गुणस्थानक तक ही होता है । मनः पर्यवज्ञान में सामान्य से बंध होता है । ओघ से आहारक द्विक सहित 65, प्रमत्तगुणस्थानक में 63, सातवें में 58-59, आठवें में 58, 56 व 26 नौवें में 22,21, 20, 19 तथा 18 तथा दसवें में 17 व ग्यारहवें बारहवें में 1 प्रकृति का बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	मनःपर्यवज्ञान
सामान्य से	65	आहारक 2, बंध होता है । शेष सामान्य बंध जैसे ।
6	63	सामान्य बंध जैसे
7	59 58	सामान्य बंध जैसे
8	58 56 26	सामान्य बंध जैसे
9	22 से 18	सामान्य बंध जैसे
10	17	सामान्य बंध जैसे
11	1	सामान्य बंध जैसे
12	1	सामान्य बंध जैसे

सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहार विशुद्धि

सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्र में प्रमत्त से अनिवृत्तिकरण तक अर्थात् छठे से नौवें तक चार गुणस्थानक होते हैं । चारों गुणस्थानकों में ओघ से बंध होता है । इनमें आहारक द्विक का भी बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	सामायिक, छेदोपस्थापनीय
सामान्य से	65	आहारक 2, बंध होता है । शेष सामान्य बंध जैसे ।
6	63	सामान्य बंध जैसे
7	59 / 58	सामान्य बंध जैसे
8	58 / 56 / 26	सामान्य बंध जैसे
9	22 से 18	सामान्य बंध जैसे

परिहारविशुद्धि चारित्र छठे व सातवें गुणस्थानक में ही होता है । इस संयम में आहारक द्विक का उदय नहीं होता है, क्योंकि उसका उदय चौदह पूर्वी आहारक लब्धिवालों को ही संभव है परंतु आहारक द्विक का बंध इस संयम में हो सकता है । इस संयम में छठे गुणस्थानक में 63 व सातवें में 59 या 58 प्रकृतियों का बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	परिहारविशुद्धि
सामान्य से	65	आहारक 2, बंध होता है । शेष सामान्य बंध जैसे ।
6	63	सामान्य बंध जैसे
7	59 / 58	सामान्य बंध जैसे

केवलज्ञान और केवलदर्शन

केवलज्ञान और केवलदर्शन इन दो मार्गणाओं में अंतिम दो 13 व 14 वाँ गुणस्थानक होता है, तेरहवें में सिर्फ साता का बंध होता है । चौदहवें में बंध का अभाव है ।

गुणस्थानक	बंध.	केवलज्ञान एवं केवलदर्शन
सामान्य से	1	मात्र शातावदनीय बंध होता है ।
13	1	मात्र शातावदनीय बंध होता है ।
14	0	सामान्य बंध जैसे

मति-श्रुत-अवधिज्ञान एवं अवधिदर्शन

मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधिज्ञान और अवधिदर्शन-इन चार मार्गणाओं में 4 से 12 तक नौ गुणस्थानक होते हैं । प्रथम तीन गुणस्थानक में सम्यक्त्व का अभाव होने से ज्ञान का अभाव है और अंतिम दो गुणस्थानकों में केवलज्ञान होने से इन चार का अभाव माना गया है ।

गुणस्थानक	बंध.	मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान
सामान्य से	79	आहारकद्विक बंध होता है । शेष सामान्य बंध जैसे ।
4	77	सामान्य बंध जैसे
5	67	सामान्य बंध जैसे
6	63	सामान्य बंध जैसे
7	59/58	सामान्य बंध जैसे
8	58/56/26	सामान्य बंध जैसे
9	22 से 18	सामान्य बंध जैसे
10	17	सामान्य बंध जैसे
11	1	सामान्य बंध जैसे
12	1	सामान्य बंध जैसे

10 सम्यक्त्व मार्गणा में बंध स्वामित्व

अड उवसमि चउ वेअगि, खइए इक्कार मिच्छितिगि देसे ।
सुहुमि सठाणं तेरस, आहारगि निअनिअ गुणोहो ।।20।।

शब्दार्थ

अड=आठ
उवसमि=उपशम सम्यक्त्व में
चउ=चार
वेअगि=वेदक सम्यक्त्व में
खइए=क्षायिक में
इक्कार=ग्यारह
मिच्छि=मिथ्यात्व में
तिगि=तीन में
देसे=देशविरति में
सुहुमि=सूक्ष्म संपराय में
सठाणं=स्वस्थान में
तेरस=तेरह
आहारगि=आहारी मार्गणा में
निअनिअ=अपने-अपने
गुणोहो=गुणस्थान प्रमाण

भावार्थ : उपशम सम्यक्त्व में अविरति आदि आठ गुणस्थानक, क्षयोपशम सम्यक्त्व में चार गुणस्थानक, क्षायिक में ग्यारह गुणस्थानक होते हैं। मिथ्यात्व त्रिक, देशविरति और सूक्ष्म संपराय में अपना-अपना गुणस्थानक होता है।

आहारी मार्गणा में तेरह गुणस्थानक होते हैं। सर्वत्र अपने-अपने गुण-स्थानक के अनुसार ओघ बंध होता है।

विवेचन :

उपशम सम्यक्त्व

अनंतानुबंधी चतुष्क और दर्शन त्रिक की सात प्रकृतियों का उपशमन करने पर उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है। एक मत के अनुसार अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथम बार सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब उपशम सम्यक्त्व ही प्राप्त करता है।

उपशम श्रेणी में रही आत्मा को भी उपशम सम्यक्त्व ही होता है।

यह उपशम सम्यक्त्व चौथे से लेकर ग्यारहवें उपशांत मोह गुणस्थानक तक आठ गुणस्थानकों में होता है।

उपशम सम्यक्त्व में आयुष्य का बंध नहीं होता है। इसमें सामान्य से 75, चौथे गुणस्थान में 75, पाँचवें में 66, छठे में 62, सातवें में 58, आठवें में 58, 56, 26 नौवें में 22, 21, 20, 19, 18 दसवें में 17 व ग्यारहवें में 1 प्रकृति का बंध होता है।

गुण.	बंध.	उपशम सम्यक्त्व
सामान्य से	77	आहारक 2, बंध होता है, 2 आयु बंध नहीं होता बाकी सामान्य बंध जैसे
4	75	2 आयु: बिना बाकी सामान्य बंध जैसे
5	66	देवायु: बिना बाकी सामान्य बंध जैसे
6	62	देवायु: बिना बाकी सामान्य बंध जैसे
7	58	देवायु: बिना बाकी सामान्य बंध जैसे
8	58 56 26	देवायु: बिना बाकी सामान्य बंध जैसे
9	22 से 18	देवायु: बिना बाकी सामान्य बंध जैसे
10	17	देवायु: बिना बाकी सामान्य बंध जैसे
11	1	देवायु: बिना बाकी सामान्य बंध जैसे

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व

वेदक सम्यक्त्व को क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भी कहते हैं । इस सम्यक्त्व में उदय को प्राप्त मिथ्यात्व दलिकों का क्षय और उदय को अप्राप्त दलिकों का उपशमन होने से इसे क्षयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं ।

यह सम्यक्त्व चौथे से सातवें तक चार गुणस्थानकों में होता है । इसमें आहारक द्विक का भी बंध संभव है । इसमें बंध-स्वामित्व सामान्य से 79, चौथे गुणस्थानक में 77, पाँचवें में 67, छठे में 63, सातवें में 59 या 58 प्रकृतियों बंध का होता है ।

गुण-स्थानक	बंध	क्षायोपशमिक सम्यक्त्व
सामान्य	79	आहारक सिक का बंध होता है शेष सामान्य बंध जैसे
4	77	जिननाम, देव और मनुष्यायुष्य का बंध होता है
5	67	वज्रऋषभनाराच, औदारिक 2, मनुष्य 3, अप्रत्याख्यानीय 4
6	63	प्रत्याख्यानीय 4
7	59 / 58	अशाता, शोक, अरति, अस्थिर, अशुभ, अपयश । आहारक 2, का बंध होता है । यहाँ देवायुष्य बांधता हुआ आये तो 59 और देवायुष्य बांध कर आये तो 58

उसके बाद के गुणस्थानकों में श्रेणी का प्रारंभ होने से उपशम या क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है ।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में मिथ्यात्व मोहनीय के प्रदेशोदय का अनुभव होता है, जबकि क्षायिक व औपशमिक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व के प्रदेशोदय व विपाकोदय दोनों का अनुभव नहीं करता है ।

क्षायिक सम्यक्त्व

क्षायिक सम्यक्त्व में चौथे से चौदहवें तक के ग्यारह गुणस्थानक होते हैं । इसमें आहारक द्विक का भी बंध हो सकता है ।

इसमें बंध-स्वामित्व 79 प्रकृतियों का है । चौथे में 77, पाँचवें में 67, छठे में 63, सातवें में 59 या 58 आठवें में 58-56-26, नौवें में 22-21-20-19-

18, दसवें में 17 व ग्यारहवें-बारहवें व तेरहवें गुणस्थानक में 1-1 प्रकृति का बंध होता है ।

गुण-स्थानक	बंध	'क्षायिक सम्यक्त्व'
सामान्य	79	आहारक द्विक का बंध बाकि सामान्य बंध जैसे
4	77	जिननाम, देव और मनुष्यायुष्य का बंध होता है
5	67	वज्रऋषभनाराच, औदारिक 2, मनुष्य 3, अप्रत्याख्यानीय 4
6	63	प्रत्याख्यानीय 4
7	59/58	अशाता, शोक, अरति, अस्थिर, अशुभ, अपयश । आहारक 2, का बंध होता है । यहाँ देवायुष्य बांधता हुआ आये तो 59 और देवायुष्य बांध कर आये तो 58
8/1	58	
8/2 से 6	56	निद्रा 2,
8/7	26	देव 2, जाति 1, शरीर 4, अंगोपांग 2, वर्ण 4, शुभ विहायोगति, समचतुरस्र सं., प्रत्येक 6, त्रस 9,
9/1	22	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा
9/2	21	पुरुषवेद
9/3	20	संज्वलन क्रोध
9/4	19	संज्वलन मान
9/5	18	संज्वलन माया
10	17	संज्वलन लोभ
11	1	ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5, यश, उच्चगोत्र
12	1	
13	1	
14	0	

शाता वेदनीय

क्षायिक सम्यक्त्व मनुष्य ही पा सकता है । क्षायिक सम्यक्त्व पाने के पूर्व आयुष्य का बंध न हुआ हो तो वह आत्मा उसी भव में मोक्ष में जाती है । परभव का देवायु या नरकायु का बंध हो गया हो तो वहाँ से च्यवकर तीसरे भव में मोक्ष में जाती है ।

क्षायिक समकिती के 4 भव : क्षायिक सम्यक्त्व पाने के पहले युगलिक के असंख्य वर्ष के मनुष्य या तिर्यंच का आयुष्य बांध दिया हो तो वहाँ से च्यवकर देव भव प्राप्तकर संख्याता वर्ष के आयुष्यवाला मनुष्य भव प्राप्तकर मोक्ष में जाता है ।

क्षायिक समकिती के 5 भव : आचार्य दु:प्पहसूरिजी म. व कृष्ण महाराजा के 5 भव भी सुनाई देते हैं । 5 भववाले जीव बहुत कम होते हैं ।

मनुष्य भव में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्तकर देव या नरक भव-फिर संख्याता वर्ष के आयुष्यवाले अयुगलिक मनुष्य भव में आए परंतु वहाँ 5 वाँ आरा होने से मोक्ष बंद होने से देशविरति, सर्वविरति स्वीकार कर देवभव में जाए और वहाँ से मनुष्य बनकर मोक्ष में जाए ।

ऐसे 5 भव वाले क्षायिक समकिती को तीसरे भव में पाँचवें-छठे गुणस्थानक में देवायु का बंध संभव है अन्यथा क्षायिक समकित के बाद पाँचवें छठे गुणस्थानक में देवायु-बंध नहीं होता है । मिथ्यात्व, सास्वादन व मिश्र को मिथ्यात्व त्रिक कहते हैं ।

सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेदों में से इन तीन भेदों में तथा देशविरति एवं सूक्ष्म संपराय मार्गणाओं में अपना-अपना एक ही गुणस्थानक होता है और उस गुणस्थानक के योग्य कर्मप्रकृति का बंध होता है ।

मिथ्यात्व में 117, सास्वादन में 101, मिश्र में 74, देशविरति में 67 व सूक्ष्म संपराय में 17 का बंध होता है ।

गुणस्थानक	बंध.	मिथ्यात्व, सास्वादन एवं मिश्र	
3	74	**मिश्र** :– 3 गु. 74	सामान्य बंध जैसे
2	101	**सास्वादन** :– 2 गु. 101	सामान्य बंध जैसे
1	117	**मिथ्यात्व** :– 1 गु. 117	सामान्य बंध जैसे

11 आहारी मार्गणा में बंध स्वामित्व

आहारी मार्गणा में 1 से 13 गुणस्थानक होते हैं । 14 वें गुणस्थान में आत्मा अणाहारी होती है । आहारी मार्गणा में दूसरे कर्मग्रंथ के बंधस्वामित्व के अनुसार बंध-स्वामित्व होता है ।

गुण-स्थानक	बंध.	आहारी मार्गणा	अबंध प्रकृति
सामान्य से	120		
1	117		आहा.2 जिननाम
2	101	नरक 3, जाति 4, स्थावर 4, नपुंसक 4◆, आतप	
3	74	अनंतानुबंधि 4, मध्यम संघयण 4, मध्यम संस्थान 4, तिर्यंच 3, दुर्भग 3, थीणद्धि 3, स्त्रीवेद, अशुभ विहायोगति, नीचगोत्र, उद्योत	मनुष्यायुष्य और देवायुष्य
4	77	जिननाम, देव और मनुष्यायुष्य का बंध होता है	
5	67	वज्रऋषभनाराच, औदारिक 2, मनुष्य 3, अप्रत्याख्यानीय 4	
6	63	प्रत्याख्यानीय 4	
7	59/58	अशाता, शोक, अरति, अस्थिर, अशुभ, अपयश । आहारक 2, का बंध होता है । यहाँ देवायुष्य बांधता हुआ आये तो 59 और देवायुष्य बांध कर आये तो 58	
8/1	58		
8/2 से 6	56	निद्रा 2,	
8/7	26	देव 2, जाति 1, शरीर 4, अंगोपांग 2, वर्ण 4, शुभ विहायोगति, समचतुरस्र सं., प्रत्येक 6, त्रस 9,	
9/1	22	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	
9/2	21	पुरुषवेद	
9/3	20	संज्वलन क्रोध	
9/4	19	संज्वलन मान	
9/5	18	संज्वलन माया	
10	17	संज्वलन लोभ	
11	1	ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5, यश, उच्चगोत्र	
12	1		
13	1		

◆ नपुंसक 4 = नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, हुंडक, सेवार्त ।

परमुवसमि वट्टंता, आउ न बंधंति तेण अजयगुणे ।
देव मणुआउ हीणो, देसाइसु पुण सुराउ विणा ।।21।।

शब्दार्थ

परम्=परंतु	**देवमणुआउ=**देव मनुष्य आयु
उवसमि=उपशम सम्यक्त्व में	**हीणो=**हीन
आउ=आयु	**देसाइसु=**देशविरति आदि में
न बंधंति=नहीं बाँधता है	**पुण=**पुनः
तेण=उस कारण	**सुराउ=**देव आयुष्य
अजयगुणे=अविरति गुणस्थान में	**विणा=**बिना

भावार्थ :

परंतु उपशम सम्यक्त्व में रहा जीव आयुष्य का बंध नहीं करता है, इस कारण अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में देवायु व मनुष्य आयु को छोड़कर अन्य प्रकृतियों का बंध होता है। तथा देशविरति आदि में देवायु बिना अन्य स्वयोग्य प्रकृतियों का बंध होता है ।

विवेचन :

उपशम सम्यक्त्व चौथे से ग्यारहवें तक आठ गुणस्थानकों में हो सकता है उस समय उन-उन गुणस्थानों में सामान्य से जो बंध कहा है-वह होता है, परंतु उपशम सम्यक्त्ववाला जीव आयुष्य का बंध नहीं करता है ।

यह सम्यक्त्व दो प्रकार का होता है-

(1) ग्रंथिभेद जन्य (2) उपशम श्रेणी में ।

उपशम श्रेणी में आयुष्य का बंध सर्वथा वर्जित है । ग्रंथिभेद जन्य सम्यक्त्व चौथे से सातवें गुणस्थानक में होता है, परंतु उस समय भी आयुष्य का बंध नहीं होता है ।

अतः उपशम सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थानक में 75, देशविरति में 66, प्रमत्त में 62 व अप्रमत्त में 58 प्रकृतियों का बंध होता है ।

12 लेश्या मार्गणा में बंध स्वामित्व

कृष्ण-नील-कापोत लेश्या

ओहे अट्ठारसयं आहारदुगूण माइलेसतिगे ।
तं तित्थोणं मिच्छे, साणाइसु सव्वहिं ओहो ।।22।।

शब्दार्थ

ओहे=ओघ में	**तित्थोणं=**तीर्थंकर नाम छोडकर
अट्ठारसयं=एक सो अठारह (118)	**मिच्छे=**मिथ्यात्व में
आहार दुगूण=आहारकद्विक बिना	**साणाइसु=**सास्वादन आदि में
माइलेसतिगे=प्रथम की तीन लेश्या में	**सव्वहिं=**सर्वत्र
तं=उस बंध में से	**ओहो=**ओघ बंध

भावार्थ :

पहली तीन लेश्याओं में आहारकद्विक को छोडकर ओघ-सामान्य से 118 प्रकृतियों का बंध होता है । उसमें तीर्थंकर नाम कर्म को छोड़कर मिथ्यात्वमें 117 का बंध और सास्वादन आदि सभी गुणस्थानकों में ओघ बंध होता है ।

विवेचन :

इस गाथा में कृष्ण, नील और कापोत इन तीन लेश्याओं का बंध-स्वामित्व बतलाया है । इन तीन लेश्याओं में 1 से 4 गुणस्थानक कहे हैं । इसी कर्मग्रंथ की 25 वीं गाथा में 1 से 6 गुणस्थानक भी कहे हैं ।

देव और नारक में अवस्थित लेश्या भी बतलाई है । सातवीं नरक के जीव भी सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं, उस समय द्रव्य से कृष्ण लेश्या है, परंतु भाव से तो विशुद्ध लेश्या ही होती है । क्योंकि सम्यक्त्व की प्राप्ति कृष्ण लेश्या में नहीं होती है ।

पूर्व में प्राप्त पाँचवें, छठे गुणस्थानकवाले के कृष्ण आदि तीन लेश्याएँ हो सकती हैं, परंतु कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले पाँचवें छठे गुणस्थान प्राप्त नहीं कर सकते हैं । इस अपेक्षा से कृष्ण आदि तीन लेश्यावालों को पाँचवें-छठे गुणस्थानक में विरोध नहीं है ।

गुणस्थानक	बंध.	कृष्ण, नील, कापोत लेश्या
सामान्य से	118	आहारक 2, बिना
1	117	सामान्य बंध जैसे
2	101	सामान्य बंध जैसे
3	74	सामान्य बंध जैसे
4	77	सामान्य बंध जैसे

तेजो-पद्म-शुक्ल लेश्या

तेऊ निरय नवूणा उज्जोअचउ निरय बार विणु सुक्का ।
विणु निरयबार पम्हा, अजिणाहारा इमा मिच्छे ।।23।।

शब्दार्थ

तेऊ=तेजोलेश्या में
निरयनवूणा=नरक त्रिक आदि नौ छोड़
उज्जोअचउ=उद्योत चतुष्क
निरय बार=नरकादि बारह
विणु=बिना
सुक्का=शुक्ल लेश्या
पम्हा=पद्मलेश्या में
अजिणाहारा=तीर्थंकर व आहारक द्विक
इमा=ये प्रकृतियाँ
मिच्छे=मिथ्यात्व में

भावार्थ : तेजोलेश्या में नरकत्रिक आदि नौ बिना, शुक्ल लेश्या में उद्योत चतुष्क व नरकत्रिक आदि बारह बिना और पद्मलेश्या में नरकादि बारह बिना बंध होता है । मिथ्यात्व गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म और आहारक द्विक को छोड बंध होता है ।

विवेचन : इस गाथा में तेजोलेश्या, पद्मलेश्या व शुक्ललेश्या का बंध स्वामित्व बताते हैं ।

तेजोलेश्या में 1 से 7 गुणस्थानक होते हैं । नरकत्रिक, सूक्ष्मत्रिक विकलेन्द्रियत्रिक–इन नौ प्रकृतियों को छोड़कर ओघ से 111 प्रकृतियों का बंध होता है ।

नरकत्रिक आदि 9 प्रकृतियाँ अशुभ होने से तेजोलेश्यावाले उनका बंध नहीं करते हैं ।

पहले-दूसरे वैमानिक देवलोकवाले तेजोलेश्यावाले होते हैं, परंतु मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय व वनस्पतिकाय में जा सकते हैं, अतः उन्हें एकेन्द्रिय स्थावर व आतप का निषेध नहीं किया है। अतः उन्हें ओघ से 111, पहले गुणस्थानक में 108, दूसरे में 101, तीसरे में 74, चौथे में 77, पाँचवें में 67, छठे में 63, सातवें में 58-59 का बंध होता है।

गुणस्थानक	बंध.	तेजोलेश्या
सामान्य से	111	सूक्ष्म 3, विकल 3, नरक 3, बिना
1	108	आहारक 2, जिननाम बिना (अबंध)
2	101	नपुंसक 4, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप बिना
3 से 7		सामान्य बंध जैसा

पद्मलेश्या में 1 से 7 गुणस्थानक होते हैं। इसमें नरक आदि बारह बिना ओघ से 108 का बंध होता है।

तेजोलेश्या की तरह यहाँ भी नरकत्रिक आदि नौ प्रकृतियों का बंध नहीं होता है, इसके साथ ही तेजोलेश्यावाले सनतकुमार आदि देवता भी एकेन्द्रियादि त्रिक का बंध नहीं करते हैं, क्योंकि वे मरकर एकेन्द्रिय में नहीं जाते हैं।

अतः पद्मलेश्या में ओघ से 108, मिथ्यात्व में 105, सास्वादन में 101 आदि का बंध होता है।

गुणस्थानक	बंध.	पद्मलेश्या
सामान्य से	108	जाति 3, स्थावर 4, नारक 3, आतप बिना
1	105	आहारक 2, जिननाम बिना (अबंध)
2	101	नपुंसक 4, बिना
3 से 7		सामान्य बंध जैसा

शुक्ल लेश्या में 1 से 13 गुणस्थानक होते हैं। यहाँ भी पद्मलेश्या की तरह बंध होता है। विशेष शुक्ल लेश्या में उद्योत चतुष्क का भी बंध नहीं होता है। अतः यहाँ बंध में 16 प्रकृतियाँ कम करने पर ओघ से 104, मिथ्यात्व में 101, सास्वादन में 97, मिश्र में 74, अविरत में 77 आदि का बंध होता है।

उद्योतनाम कर्म तिर्यंच गति, तिर्यंचानुपूर्वी और तिर्यंच आयुष्य का उदय तिर्यंच गति में ही होता है। तेजो-पद्म लेश्यावाले तिर्यंच गति में जा

सकते हैं परंतु शुक्ल लेश्यावाले नहीं जाते हैं, अतः उन चार का बंध भी कम हो जाता है ।

गुणस्थानक	बंध.	शुक्ललेश्या
सामान्य से	104	जाति 4, स्थावर 4, नारक 3, आतप, तिर्यंच 3, उद्योत बिना
1	101	आहारक 2, जिननाम बिना (अबंध)
2	97	नपुंसक 4, बिना
3	74	तिर्यंच 3, उद्योत बिना सामान्य बंध जैसे 21 बिना और 2 आयु (अबंध) बिना
4 से 13		सामान्य जैसे

13 भव्य और संज्ञी मार्गणा में बंध स्वामित्व

सव्वगुण भव्वसन्निसु, ओहु अभव्वा असन्नि मिच्छिसमा ।
सासणि असन्नि सन्निव्व, कम्मणभंगो अणाहारे ।।24।।

शब्दार्थ

सव्वगुण=सभी गुणस्थानक
भव्व=भव्य
सन्निसु=संज्ञी मार्गणा में
ओहु=ओघ बंध
अभव्वा=अभव्य जीव
असन्नि=असंज्ञी में बंध
मिच्छिसमा=मिथ्यात्वी के समान
सासणि=सास्वादन में
असन्नि=असंज्ञी में
सन्निव्व=संज्ञी की तरह
कम्मणभंगो=कार्मण का भंग
अणाहारे=अणाहारी मार्गणा में

भावार्थ : भव्य और संज्ञी मार्गणा में सभी स्थानों में सामान्य से बंध होता है ।

अभव्य और असंज्ञी का बंध स्वामित्व मिथ्यात्व गुणस्थान के समान है ।

सास्वादन गुणस्थानक में असंज्ञी का बंध-स्वामित्व संज्ञी के समान एवं अनाहारक मार्गणा में बंध स्वामित्व कार्मण योग के समान है ।

विवेचन : भव्य और संज्ञी मार्गणा में 1 से 14 सभी गुणस्थानक कहे गए हैं और उनमें द्वितीय कर्मग्रंथ में बताए अनुसार सभी गुणस्थानों में वही बंध स्वामित्व समझना चाहिए ।

असंज्ञी प्राणियों को द्रव्य–मन के बिना भाव–मन नहीं होता है, परंतु

केवली (तीर्थंकर) भगवंतों को भावमन के बिना भी द्रव्य मन होता है । केवली भगवंत को मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम जन्य मनन परिणाम रूप भाव मन नहीं है, परंतु मनःपर्यवज्ञानी या अनुत्तरदेवविमानवासी देवताओं के द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने रूप द्रव्यमन होता है, अतः उन्हें भाव मन के बिना भी द्रव्यमन होता है । वह मन चौदह गुणस्थानक में होता है । सिद्धांत में उन्हें `नोसंज्ञी नोअसंज्ञी' कहा है ।

संज्ञी मार्गणा में द्रव्य मन की अपेक्षा संज्ञी मानकर चौदह गुणस्थानक कहे हैं । अभव्य जीवों को पहला ही गुणस्थानक होता है । क्योंकि उन्हें कभी भी सम्यक्त्व और संयम की प्राप्ति नहीं होती है । अतः वे तीर्थंकरनाम व आहारक द्विक को छोड़कर मिथ्यात्व गुणस्थान में 117 प्रकृतियों का बंध कर सकते हैं ।

असंज्ञी प्राणियों को पहला व दूसरा दो ही गुणस्थान हो सकते हैं । पहले में 117 व दूसरे में 101 प्रकृतियों का बंध कर सकते हैं ।

अनाहारक मार्गणा में कार्मण काययोग के समान बंध होता है ।

अनाहारक अवस्था में पहला, दूसरा, चौथा, तेरहवाँ और चौदहवाँ गुणस्थानक हो सकता है ।

एक गति से दूसरी गति में विग्रह गति से जाते समय आत्मा एक, दो या तीन समय तक अनाहारक होती है, उस समय आत्मा को औदारिक आदि स्थूल शरीर नहीं होने से अनाहारक अवस्था होती है तथा केवली समुद्घात में तीसरे चौथे व पाँचवें समय में भी अनाहारक होती है ।

चौदहवें गुणस्थान में योग का सर्वथा निरोध हो जाने से किसी प्रकार का आहार संभव नहीं है ।

14 लेश्या में मतांतर

तिसु दुसु सुक्काइ गुणा, चउ सग तेर त्ति बंध सामित्तं ।
देविंदसूरि रइअं नेयं कम्मत्थयं सोउं ।।25।।

शब्दार्थ

तिसु=तीन लेश्याओं में
दुसु=दो लेश्याओं में
सुक्काइ=शुक्ल लेश्या में
गुणा=गुणस्थानक
चउ=चार
सग=सात

तेर=तेरह	**रइअं=**लिखा हुआ
त्ति=इस प्रकार	**नेयं=**जानना चाहिए
बंधसामित्तं=बंध स्वामित्व	**कम्मत्थयं=**कर्मस्तव
देविंदसूरि=देवेन्द्रसूरि	**सोउं=**सुनकर

भावार्थ : पहली तीन लेश्याओं में पहले से चार, तेज और पद्म लेश्या में पहले से सात तथा शुक्ल लेश्या में तेरह गुणस्थानक होते हैं ।

इस प्रकार श्री **देवेन्द्रसूरि** द्वारा विरचित इस बंध स्वामित्व प्रकरण का ज्ञान `**कर्मस्तव**' नाम के दूसरे कर्मग्रंथ के अनुसार जानना चाहिए ।

विवेचन : लेश्याओं में गुणस्थानक बताकर ग्रंथ का समापन करते हैं ।

अन्य मार्गणाओं के गुणस्थानकों में मतभेद नहीं है । परंतु लेश्या मार्गणा में थोड़ा मतभेद है । चौथे कर्मग्रंथ में कृष्ण आदि तीन लेश्याओं में 6 गुण स्थानक बतलाए हैं, जबकि यहाँ चार ही गुणस्थानक कहे हैं ।

कृष्ण आदि तीन लेश्याएँ अशुभ हैं, अतः उन लेश्याओं में रहा जीव अधिकतम चार गुणस्थानक प्राप्त कर सकता है, परंतु पाँचवें और छठे गुणस्थानक में रहा जीव अशुभ लेश्या में भी आ सकता है । इस अपेक्षा से वहाँ छह गुण-स्थानक कहे हैं ।

देव व नरक में द्रव्य लेश्या नियत है, परंतु भाव के परिवर्तन से छह लेश्याएँ वहाँ संभव है । 1 से 7 नरक के जीवों में द्रव्य से कृष्ण, नील, कापोत लेश्या होने पर भी जब वे समकित पाते हैं, तब उन्हें तेज, पद्म व शुक्ल भाव लेश्या होती है ।

तेज व पद्म लेश्या में 1 से 7 गुणस्थानक तथा शुक्ल लेश्या में 1 से 13 गुणस्थानक होते हैं । गुणस्थानकों में प्रकृतियों का बंध दूसरे कर्मग्रंथ के बंध-स्वामित्व के अनुसार जानना चाहिए ।

इस ग्रंथ में 62 मार्गणाओं में रहा जीव भिन्न-भिन्न गुणस्थानकों में कितनी कर्म प्रकृतियाँ बाँधता है, उसके अनुसार इस ग्रंथ का नाम `बंध-स्वामित्व' रखा है ।

इस ग्रंथ के रचयिता तपागच्छ के आद्य आचार्य जगच्चन्द्रसूरिजी के शिष्य आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी म. है ।

इस कर्मग्रंथ में 62 में से बहुतसी मार्गणाओं में बंध-स्वामित्व ओघ से कहा है, उसका बोध दूसरे कर्मग्रंथ के अभ्यास से ही संभव है, अतः इस कर्म ग्रंथ के अभ्यासी को पहले दूसरे कर्मग्रंथ का अभ्यास अवश्य करना चाहिए ।

14 गुणस्थानक में मार्गणाओं का बंध स्वामित्व

क्रमांक	गु.	ओ.	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
मार्गणा	गुणस्थान	ओघबंध	मिथ्यात्व	सास्वादन	मिश्रदृष्टि	अविरति	देशविरति	प्रमत्त संयत	अप्रमत्त संयत	अपूर्वकरण	अनिवृत्ति बादर संपराय	सूक्ष्म संपराय	उपशांत मोह	क्षीण मोह	संयोगी केवली	अयोगी केवली
सामान्य से	14	120	107	101	74	77	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	0
नरकगति	4	101	100	96	70	72										
रत्नप्रभादिक	4	101	100	96	70	72										
पंकप्रभादिक	4	100	100	96	70	71										
तमस्तम:प्रभा	4	99	96	91	70	70										
तिर्यंच पर्याप्ता	5	117	117	101	69	70	66									
तिर्यंच अपर्याप्ता	1	109	109													
मनुष्य पर्याप्ता	14	120	117	101	69	71	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	0
मनुष्य अपर्याप्ता	1	109	109													
देवगति	4	104	103	96	70	72										
भ.व्यं.ज्यो.	4	103	103	96	70	71										
सौधर्म-इशान	4	104	103	96	70	72										
सन.से सहस्रार	4	101	100	96	70	72										
आन.से 9 ग्रै.	4	97	96	92	70	72										
5 अनुत्तर	1	72				72										
एकेन्द्रिय	2	109	109	96/94												
द्वीन्द्रिय	2	109	109	96/94												
त्रीन्द्रिय	2	109	109	96/94												
चतुरिन्द्रिय	2	109	109	96/94												
पंचेन्द्रिय	14	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	0
पृथ्वीकाय	2	109	109	96/94												
अप्काय	2	109	109	96/94												
तेउकाय	1	105	105													

क्रमांक	गु.	ओ.	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
वाउकाय	1	105	105													
वनस्पतिकाय	2	109	109	96/94												
त्रसकाय	14	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	0
मनोयोग	13	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	
वचनयोग	13	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	
औदारिक काययोग	13	120	117	101	69	71	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	
औ.मिश्र काययोग	4	114	109	94		70									1	
वैक्रिय काययोग	4	104	103	96	70	72										
वै.मिश्र काययोग	3	102	101	94		71										
आहारक काययोग	2							63	59/58							
आ.मिश्र काययोग	1							63								
कार्मण काययोग	4	112	107	94		75									1	
स्त्रीवेद	9	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22					
पुरुषवेद	9	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22					
नपुंसक वेद	9	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22					
अनंतानुबंधी 4	2	117	117	101												
अप्रत्याख्यानी 4	4	117	117	101	74	77										
प्रत्याख्यानीय 4	5	118	117	101	74	77	67									
संज्वलन 3	9	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22					
संज्वलन लोभ	10	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22	17				
मतिज्ञान	9	79				77	67	63	59/58	58	22	17	1	1		
श्रुतज्ञान	9	79				77	67	63	59/58	58	22	17	1	1		
अवधिज्ञान	9	79				77	67	63	59/58	58	22	17	1	1		
मन:पर्यवज्ञान	7	65						63	59/58	58	22	17	1	1		
केवलज्ञान	2	1													1	0
मत्यज्ञान	3	117	117	101	74											
श्रुताज्ञान	3	117	117	101	74											
विभंगज्ञान	3	117	117	101	74											
सामायिक	4	65						63	59/58	58	22					

क्रमांक	गु.	ओ.	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
छेदोपस्थापनीय	4	65						63	59/58	58	22					
परिहारविशुद्धि	2	65						63	59/58							
सूक्ष्मसंपराय	1	17										17				
यथाख्यात	4	1											1	1	1	0
देशविरति	1						67									
अविरति	4	118	117	101	74	77										
चक्षुदर्शन	12	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22	17	1	1		
अचक्षुदर्शन	12	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22	17	1	1		
अवधिदर्शन	9	79				77	67	63	59/58	58	22	17	1	1		
केवलदर्शन	2	1													1	
कृष्णलेश्या	4	118	117	101	74	77										
नीललेश्या	4	118	117	101	74	77										
कापोतलेश्या	4	118	117	101	74	77										
तेजोलेश्या	7	111	108	101	74	77	67	63	59/58							
पद्मलेश्या	7	108	105	101	74	77	67	63	59/58							
शुक्ललेश्या	13	104	101	97	74	77	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	
भव्य	14	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	0
अभव्य	1	117	117													
औपशमिक	8	77				75	66	62	59/58	58	22	17	1			
क्षायिक	11	79				77	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	0
क्षायोपशमिक	4	79				77	67	63	59/58							
मिश्र	1	74			74											
सास्वादन	1	101		101												
मिथ्यात्व	1	117	117													
संज्ञी	14	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	0
असंज्ञी	2	117	117	101												
आहारी	13	120	117	101	74	77	67	63	59/58	58	22	17	1	1	1	
अणाहारी	5	112	107	94		75									1	0

16 मार्गणाओं में उदय-उदीरणा-सत्ता-स्वामित्व

(मुनिश्री मिश्रीमलजी विवेचित तीसरे कर्मग्रंथ में से साभार)

तीसरे कर्मग्रन्थ में सामान्य और गुणस्थानकों के माध्यम से मार्गणाओं में बन्धस्वामित्व का कथन है, किन्तु उदय, उदीरणा, सत्ता के स्वामित्व का विचार नहीं किया गया है। लेकिन उपयोगिता की दृष्टि से संक्षेप में उनका विवेचन आवश्यक प्रतीत होता है। अतः उनसे सम्बन्धित स्पष्टीकरण किया जाता है।

उदयस्वामित्व

1) नरकगति–इस मार्गणा में मिथ्यात्व से लेकर अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानक पर्यन्त चार गुणस्थानक होते हैं। सामान्यतया उदययोग 122 प्रकृतियाँ हैं, उनमें से ज्ञानावरण पाँच, दर्शनावरण चार, अंतराय पाँच, मिथ्यात्वमोहनीय, तैजसनाम, कार्मणनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु नाम, निर्माणनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम और अशुभनाम ये सत्तावीस प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी-अपनी-अपनी उदय-भूमिका पर्यन्त अवश्य उदयवाली होती हैं। उनमें मिथ्यात्वमोहनीय की उदयभूमि प्रथम गुणस्थानक है और वहाँ वह ध्रुवोदयी है। पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय इन चौदह प्रकृतियों का उदय बारहवें गुणस्थानक तक और शेष बारह प्रकृतियों का उदय तेरहवें गुणस्थानक तक सभी जीवों के होने से वे **ध्रुवोदयी** हैं।

ये सत्तावीस ध्रुवोदयी प्रकृतियाँ तथा निद्रा, प्रचला, वेदनीयद्विक, नीच गोत्र, नरकत्रिक, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियद्विक, हुण्डसंस्थान, अशुभविहायोगति, पराघात, उच्छ्वासनाम, उपघात, त्रसचतुष्क, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयश, सोलह कषाय, हास्यादिषट्क, नपुंसक वेद, सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्र मोहनीय ये 76 प्रकृतियाँ सामान्य से नारकों के उदय में होती हैं। उनमें से **पंचसंग्रह** और **कर्मप्रकृति** के मत से स्त्यानर्द्धित्रिक का उदय वैक्रिय शरीरी देव और नारकों के नहीं होता है। कहा है कि असंख्य वर्ष की आयु वाले मनुष्य, तिर्यंच, वैक्रिय शरीर वाले, आहारक शरीर वाले और अप्रमत्त साधु के सिवाय शेष अन्य के स्त्यानर्द्धित्रिक का उदय और उदीरणा होती है।

सामान्य से उदयवाली 76 प्रकृतियों में से सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्र मोहनीय को कम करने पर मिथ्यात्व गुणस्थानक में 74 प्रकृतियाँ तथा नरकानुपूर्वी और मिथ्यात्वमोहनीय के सिवाय 72 प्रकृतियाँ सास्वादन गुणस्थानक में उदययोग्य हैं, उनमें से अनन्तानुबन्धीचतुष्क को कम करने और मिश्र मोहनीय को जोड़ने पर मिश्रगुणस्थानक में 69 प्रकृतियाँ और उनमें से मिश्र मोहनीय को कम करने और सम्यक्त्वमोहनीय तथा नरकानुपूर्वी का प्रक्षेप करने से अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 70 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

2) तिर्यंचगति–इस मार्गणा में पाँच गुणस्थानक होते हैं । इसमें देवत्रिक, नरकत्रिक, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, मनुष्यत्रिक, उच्च गोत्र और जिन नाम-इन पन्द्रह प्रकृतियों का उदय नहीं होता है । इसलिए उदययोग्य 122 प्रकृतियों में से पन्द्रह प्रकृतियों को कम करने पर सामान्य से 107 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । तिर्यंचों के भवधारणीय वैक्रिय शरीर नहीं होता है, किन्तु लब्धिप्रत्यय वैक्रिय शरीर होता है, अतः उसकी अपेक्षा से वैक्रियद्विक को साथ जोड़ने पर 109 प्रकृतियाँ उदय में मानी जा सकती हैं लेकिन सामान्य से 107 प्रकृतियाँ उदययोग्य मानी जाती हैं ।

पूर्वोक्त 107 प्रकृतियों में से सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय–इन दो प्रकृतियों को कम करने से मिथ्यात्व गुणस्थानक में 105 प्रकृतियाँ, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, आतपनाम और मिथ्यात्वमोहनीय-इन पाँच प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ उदययोग्य होती हैं, उनमें से अनन्तानुबन्धी चतुष्क, स्थावर नाम, एकेन्द्रियादि जातिचतुष्क और तिर्यंचानुपूर्वी-इन दस प्रकृतियों को कम करने पर और मिश्रमोहनीय को जोड़ने से मिश्र गुणस्थानक में 91 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । उनमें से मिश्रमोहनीय के कम करने और सम्यक्त्व मोहनीय तथा तिर्यंचानुपूर्वी-इन दो प्रकृतियों को मिलाने से अविरत गुणस्थानक में 92 उदय में होती हैं । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, दुर्भग, अनादेय, अयश और तिर्यंचानुपूर्वी इन आठ प्रकृतियों के सिवाय देशविरति गुणस्थानक में 84 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

यहाँ सर्वत्र लब्धिप्रत्यय वैक्रिय शरीर की विवक्षा नहीं की है, अतएव वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग इन दो प्रकृतियों को सर्वत्र कम समझना चाहिए ।

3) मनुष्यगति–इसमें चौदह गुणस्थानक होते हैं। देवत्रिक, नरकत्रिक, वैक्रियद्विक, जातिचतुष्क, तिर्यंचत्रिक, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और आतप-इन 20 प्रकृतियों का उदय मनुष्य को होता नहीं है, इसलिए उनको कम करने पर सामान्य से 102 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। परन्तु लब्धि-निमित्तक वैक्रिय शरीर की अपेक्षा उत्तरवैक्रिय शरीर करने पर वैक्रियद्विक और उद्योत नाम का उदय होने से इन तीन प्रकृतियों सहित 105 प्रकृतियाँ भी उदय में हो सकती हैं लेकिन उनकी यहाँ अपेक्षा नहीं की गई है। यहाँ सामान्य से जो 102 प्रकृतियाँ उदय में आती हैं, उनमें से मिथ्यात्व गुणस्थानक में आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय-इन पाँच प्रकृतियों का उदय नहीं होने से, उन्हें कम करने पर 97 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। अपर्याप्तनाम और मिथ्यात्वमोहनीय-इन दो प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन गुणस्थानक में 95 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। उनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और मनुष्यानुपूर्वी इन पाँच प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को जोड़ने पर मिश्र गुणस्थानक में 91 प्रकृतियाँ हैं तथा उनमें से मिश्रमोहनीय को कम करने तथा सम्यक्त्वमोहनीय एवं मनुष्यानुपूर्वी को मिलाने पर अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 92 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

अप्रत्याख्यानावरण कषायचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और नीचगोत्र इन 9 प्रकृतियों के सिवाय देशविरत गुणस्थानक में 83 प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। उक्त 83 प्रकृतियों में से प्रत्याख्यानावरणचतुष्क का उदयविच्छेद पाँचवें गुणस्थानक में हो जाने से छठे प्रमत्तविरत गुणस्थानक में 79 प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं, लेकिन आहारकद्विक का उदय छठे गुणस्थानक में होता है अतः इन दो प्रकृतियों को मिलाने से 81 प्रकृतियों का उदय माना जाता है।

स्त्यानर्द्धित्रिक और आहारकद्विक-इन पाँच प्रकृतियों के सिवाय अप्रमत्त गुणस्थानक में 76 प्रकृतियाँ होती हैं। सम्यक्त्वमोहनीय और अंतिम तीन संहनन-इन चार प्रकृतियों को कम करने पर अपूर्वकरण में 72 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। हास्यादिषट्क के सिवाय अनिवृत्ति गुणस्थानक में 66 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। वेदत्रिक और संज्वलनत्रिक इन छह प्रकृतियों के अलावा सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में 60 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। संज्वलन लोभ

के बिना उपशांतमोह गुणस्थानक में 59 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। ऋषभनाराच और नाराच इन दो प्रकृतियों के सिवाय क्षीणमोह गुणस्थानक के द्विचरम समय में 57 प्रकृतियाँ और निद्रा, प्रचला के सिवाय क्षीणमोह के अन्तिम समय में 55 प्रकृतियाँ होती हैं। ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4 और अन्तराय 5-इन चौदह प्रकृतियों के उदयविच्छेद होने से तथा तीर्थंकर नामकर्म उदययोग्य होने से सयोगिकेवली गुणस्थानक में 42 प्रकृतियाँ होती हैं। औदारिकद्विक, विहायोगतिद्विक, अस्थिर, अशुभ, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, संस्थानषट्क, अगुरुलघुचतुष्क, वर्णचतुष्क, निर्माण, तैजस, कार्मण, वज्रऋषभनाराच संहनन, दुःस्वर, सुस्वर, सातावेदनीय और असातावेदनीय में से कोई एक इन 30 प्रकृतियों के बिना अयोगिकेवली गुणस्थानक में 12 प्रकृतियों का उदय होता है। सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, साता या असाता वेदनीय में से कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्यद्विक, जिननाम और उच्च गोत्र-ये 12 प्रकृतियाँ अयोगिकेवली गुणस्थानक के अन्तिम समय में उदय विच्छिन्न होती हैं।

4) देवगति-इस मार्गणा में प्रथम चार गुणस्थानक होते हैं। नरकत्रिक, तिर्यंचत्रिक, मनुष्यत्रिक, जातिचतुष्क, औदारिकद्विक, आहारकद्विक, संहननषट्क, न्यग्रोधपरिमण्डलादि पाँच संस्थान, अशुभ विहायोगति, आतप, उद्योत, जिननाम, स्थावरचतुष्क, दुःस्वर, नपुंसक वेद, नीच गोत्र और स्त्यानर्द्धित्रिक इन 42 प्रकृतियों के सिवाय ओघ से देवों के 80 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। यहाँ उत्तरवैक्रिय शरीर करने की अपेक्षा देवों के उद्योत नामकर्म का उदय संभव है, परन्तु भवप्रत्यय शरीर निमित्तक उद्योत का उदय विवक्षित होने से दोष नहीं है। मिथ्यात्व गुणस्थानक में मिश्र व सम्यक्त्व मोहनीय का अनुदय होने से 78 प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। मिथ्यात्व का विच्छेद हो जाने से सास्वादन में 77 प्रकृतियाँ, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और देवानुपूर्वी इन पाँच प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 73 प्रकृतियाँ, मिश्रमोहनीय को कम करने तथा सम्यक्त्व मोहनीय और देवानुपूर्वी इन दो प्रकृतियों को जोड़ने पर अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 74 प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं।

5) एकेन्द्रिय जाति–एकेन्द्रिय मार्गणा में आदि के दो गुणस्थानक होते

हैं। वैक्रियाष्टक, मनुष्यत्रिक, उच्चगोत्र, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, द्वीन्द्रियजातिचतुष्क, आहारकद्विक, औदारिक अंगोपांग, आदि के पाँच संस्थान, विहायोगतिद्विक, जिननाम, त्रस, छह संहनन, दुःस्वर, सुस्वर, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय, सुभगनाम, आदेयनाम-इन 42 प्रकृतियों के बिना सामान्यतः और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 80 प्रकृतियाँ होती हैं और वायुकाय को वैक्रिय शरीर नाम का उदय होने से एकेन्द्रिय मार्गणा में 81 प्रकृतियाँ उदय में होती है।

सूक्ष्मत्रिक, आतपनाम, उद्योतनाम, मिथ्यात्वमोहनीय, पराघातनाम और श्वासोच्छ्वासनाम-इन आठ प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन गुणस्थानक में 72 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं, क्योंकि सास्वादन गुणस्थानक एकेन्द्रिय पृथ्वी, अप् और वनस्पति को अपर्याप्त अवस्था में शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के पहले होता है और आतपनाम, उद्योतनाम, पराघातनाम और उच्छ्वास का उदय शरीर-पर्याप्ति एवं श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होने के बाद होता है। औप-शमिक सम्यक्त्व का उद्वमन करने वाला सूक्ष्म एकेन्द्रिय, लब्धि-अपर्याप्त और साधारण वनस्पति में उत्पन्न नहीं होता है, अतः उसके वहाँ सूक्ष्मत्रिक उदय में नहीं है।

6) द्वीन्द्रिय जाति–एकेन्द्रिय के समान द्वीन्द्रिय के भी दो गुणस्थानक होते हैं। वैक्रियाष्टक, मनुष्यत्रिक, उच्चगोत्र, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, द्वीन्द्रिय के बिना एकेन्द्रिय जातिचतुष्क, आहारकद्विक, आदि के पाँच संहनन, पाँच संस्थान, शुभ विहायोगति, जिननाम, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, सुभग, आदेय, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय-इन चालीस प्रकृतियों के उदय-अयोग्य होने से सामान्यतः और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 82 प्रकृतियाँ उदय-योग्य हैं। उनमें से अपर्याप्त नाम, उद्योत, मिथ्यात्व, पराघात, अशुभ विहायोगति, उच्छ्वास, सुस्वर, दुःस्वर-इन आठ प्रकृतियों के बिना सास्वादन गुणस्थानक में 74 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं, क्योंकि मिथ्यात्वमोहनीय का उदय तो वहाँ होता नहीं है और उसके सिवाय शेष प्रकृतियों का उदय शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के बाद ही होता है और सास्वादन तो शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले ही होता है।

7-8) त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति-इन दोनों मार्गणाओं में भी द्वीन्द्रिय के समान ही दो गुणस्थानक होते हैं और उदयस्वामित्व भी उसके समान जानना चाहिए, किन्तु द्वीन्द्रिय के स्थान पर त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय समझना ।

9) पंचेन्द्रिय जाति–इसमें चौदह गुणस्थानक होते हैं । जातिचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और आतप इन आठ प्रकृतियों के बिना सामान्य से 114 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । उनमें से आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमोहनीय-इन पाँच प्रकृतियों को कम करने पर मिथ्यात्व गुणस्थानक में 109 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं तथा मिथ्यात्वमोहनीय, अपर्याप्त और नरकानुपूर्वी-इन तीन प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन गुणस्थानक में 106 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक इन सात प्रकृतियों के बिना और मिश्र मोहनीय को मिलाने से मिश्र गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

मिश्रमोहनीय को कम करने और चार आनुपूर्वी तथा सम्यक्त्वमोहनीय को संयुक्त करने पर अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 104 प्रकृतियाँ होती हैं । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, वैक्रियाष्टक, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयशकीर्ति इन 17 प्रकृतियों के सिवाय देशविरत गुणस्थानक में 87 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं और छठे गुणस्थानक से लेकर चौदहवें गुणस्थानक तक मनुष्यगति के समान 81, 76, 72, 66, 60, 59, 57,42 और 12 प्रकृतियों का उदय स्वामित्व समझना चाहिए ।

10) पृथ्वीकाय–इस मार्गणा में एकेन्द्रिय की तरह दो गुणस्थानक समझना चाहिए । एकेन्द्रिय मार्गणा में कही गई 42 प्रकृतियाँ और साधारणनाम के सिवाय सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 79 प्रकृतियों का उदय होता है । सूक्ष्म, लब्धि-अपर्याप्त, आतप, उद्योत, मिथ्यात्व, पराघात, श्वासोच्छ्वास इन सात प्रकृतियों के बिना सास्वादन गुणस्थानक में 72 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । सास्वादन गुणस्थानक करण-अपर्याप्त पृथ्वीकायादि को होता है, किन्तु लब्धि-अपर्याप्त को नहीं होता है ।

11) अप्काय–पृथ्वीकाय के समान यहाँ भी दो गुणस्थानक होते हैं ।

पृथ्वीकाय मार्गणा में कही गई 43 प्रकृतियाँ और आतपनाम के सिवाय सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 78 प्रकृतियों का उदय होता है। उनमें सूक्ष्म, अपर्याप्त, उद्योत, मिथ्यात्व, पराघात और उच्छ्वास इन छह प्रकृतियों के अलावा सास्वादन गुणस्थानक में 72 प्रकृतियाँ होती हैं। क्योंकि सूक्ष्म, एकेन्द्रिय और लब्धि-अपर्याप्त में सम्यक्त्व का उद्वमन करने वाला कोई जीव उत्पन्न नहीं होता है। अतएव सास्वादन गुणस्थानक में सूक्ष्म और अपर्याप्त नाम का उदय नहीं होता है। शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद उद्योत नाम और पराघात नाम का उदय होता है। श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति पूर्ण होने के अनन्तर श्वासोच्छ्वास का उदय होता है और मिथ्यात्वमोह का उदय यहाँ होता नहीं है।

12-13) तेजस्काय, वायुकाय–इनमें पहला गुणस्थानक होता है। तेजस्काय में अप्काय की 44 तथा उद्योत और यश:कीर्ति इन 46 प्रकृतियों के सिवाय 76 प्रकृतियों का तथा वायुकाय में वैक्रिय शरीर सहित 77 प्रकृतियों का उदय होता है।

14) वनस्पतिकाय–इस मार्गणा में दो गुणस्थानक होते हैं। एकेन्द्रिय मार्गणा में कही गई 42 प्रकृतियों और आतपनाम के अतिरिक्त सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 79 और सास्वादन गुणस्थानक में 72 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

15) त्रसकाय–इसमें चौदह गुणस्थानक होते हैं। उसमें स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप और एकेन्द्रिय जाति इन पाँच प्रकृतियों के अलावा सामान्य से 117 व आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय इन पाँच प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 112 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। उनमें से मिथ्यात्व, अपर्याप्त और नरकानुपूर्वी-इन तीन प्रकृतियों को कम करने से सास्वादन गुणस्थानक में 109 प्रकृतियाँ होती हैं। उनमें से अनन्तानुबन्धी चतुष्क, विकलेन्द्रियत्रिक और आनुपूर्वीत्रिक–इन दस प्रकृतियों का उदयविच्छेद होता है और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

आनुपूर्वीचतुष्क और सम्यक्त्वमोहनीय– इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने

और मिश्रमोहनीय को कम करने पर अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 104 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। देशविरत आदि गुणस्थानकों में सामान्य उदयाधिकार में कहा गया 87, 81, 76, 72, 66, 60, 59, 57, 42 और 12 प्रकृतियों का उदय क्रमशः समझना चाहिए।

16) मनोयोग–यहाँ तेरह गुणस्थानक होते हैं। स्थावर चतुष्क, जातिचतुष्क, आतप और आनुपूर्वीचतुष्क-इन तेरह प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 109 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व और मिश्र इन पाँच प्रकृतियों के अलावा मिथ्यात्व गुणस्थानक में 104 प्रकृतियाँ, मिथ्यात्व से रहित सास्वादन में 103, अनन्तानुबन्धीचतुष्क को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 100 तथा मिश्रमोहनीय को कम करने और सम्यक्त्वमोहनीय को जोडने पर अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 100, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, वैक्रियद्विक, देवगति, देवायु, नरकगति, नरकायु, दुर्भग, अनादेय और अयश-इन तेरह प्रकृतियों के सिवाय देशविरत गुणस्थानक में 87 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। शेष रहे गुणस्थानकों में मनुष्यगति मार्गणा के समान उदय समझना चाहिए।

17) वचनयोग–यहाँ तेरह गुणस्थानक होते हैं। स्थावरचतुष्क, एकेन्द्रिय जाति, आतप और आनुपूर्वीचतुष्क-इन दस प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 112, आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व और मिश्र-इन पाँच प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 107, मिथ्यात्वमोहनीय और विकलेन्द्रियत्रिक इन चार प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन गुणस्थानक में 103 प्रकृतियाँ होती हैं। यद्यपि विकलेन्द्रिय को वचनयोग होता है, परन्तु भाषापर्याप्ति पूर्ण होने के बाद ही होता है और सास्वादन तो शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के पहले होता है। इसलिए इस मार्गणा में सास्वादन गुणस्थानक में वचनयोग नहीं होता है। अतएव विकलेन्द्रियत्रिक निकाल दिया है। उसमें से अनन्तानुबन्धी चतुष्क को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। अविरतसम्यग्दृष्टि से लेकर आगे के गुणस्थानकों में मनोयोग मार्गणा के समान समझना चाहिए।

18) काययोग–इस मार्गणा में तेरह गुणस्थानक होते हैं। इसमें सामान्य से 122, मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117, सास्वादन में 111 इत्यादि सामान्य उदयाधिकार में कही प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए।

19) पुरुषवेद–इसमें नौ गुणस्थानक होते हैं। नरकत्रिक, जातिचतुष्क, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप, अपर्याप्त, जिननाम, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इन 15 प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 107 प्रकृतियों का उदय होता है। उनमें से आहारकद्विक, सम्यक्त्व और मिश्र इन चार प्रकृतियों के अलावा मिथ्यात्व गुणस्थानक में 103 प्रकृतियाँ, मिथ्यात्व प्रकृति के बिना सास्वादन में 102 प्रकृतियाँ, उनमें से अनन्तानुबन्धीचतुष्क और आनुपूर्वी त्रिक-इन सात प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को जोड़ने से मिश्र गुणस्थानक में 96 प्रकृतियाँ और उनमें से मिश्र मोहनीय को निकालकर सम्यक्त्व तथा आनुपूर्वीत्रिक-इन चार प्रकृतियों को जोड़ने से अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 99 प्रकृतियाँ होती हैं।

आनुपूर्वीत्रिक, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, देवगति, देवायु, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय और अयश इन 14 प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 85 प्रकृतियाँ होती हैं। प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत और नीचगोत्र इन आठ प्रकृतियों को कम करके आहारकद्विक को मिलाने से प्रमत्तसंयत गुणस्थानक में 79 प्रकृतियाँ होती हैं। उनमें से स्त्यानर्द्धित्रिक और आहारकद्विक-इन पाँच प्रकृतियों के सिवाय अप्रमत्त में 74 प्रकृतियाँ, सम्यक्त्वमोहनीय और अंतिम तीन संहनन-इन चार प्रकृतियों के बिना अपूर्वकरण गुणस्थानक में 70 प्रकृतियाँ होती हैं और हास्यादि छह प्रकृतियों के बिना अनिवृत्ति गुणस्थानक में 64 प्रकृतियाँ होती हैं।

20) स्त्रीवेद–इसमें भी पुरुषवेद के समान नौ गुणस्थानक होते हैं और यहाँ सामान्य से तथा प्रमत्त गुणस्थानक में आहारकद्विक के बिना तथा चौथे गुणस्थानक में आनुपूर्वीत्रिक के सिवाय शेष रही प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए। क्योंकि प्रायः स्त्रीवेदी के परभव में जाते समय चतुर्थ गुणस्थानक नहीं होता है। अतः आनुपूर्वीत्रिक का उदय नहीं होता है और स्त्री चतुर्दश पूर्वधर नहीं होती है। इसलिए उसे आहारकद्विक का भी उदय नहीं होता है। अतः सामान्य से तथा नौ गुणस्थानकों में अनुक्रम से 105, 103, 102, 96, 85, 77, 74, 70 और 64 इस प्रकार उदय समझना चाहिए।

21) नपुंसकवेद–इसमें भी नौ गुणस्थानक होते हैं। इसमें देवत्रिक,

जिननाम, स्त्रीवेद और पुरुषवेद, आहारकद्विक इन 8 प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 114, सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय-इन दो प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 112 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । उनमें से सूक्ष्मत्रिक, आतप, मिथ्यात्व, नरकानुपूर्वी-इन छह प्रकृतियों को कम करने पर सास्वादन गुणस्थानक में 106 प्रकृतियाँ होती हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर और जातिचतुष्क इन 11 प्रकृतियों के कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 96 प्रकृतियाँ और मिश्र मोहनीय के क्षय व सम्यक्त्व व नरकानुपूर्वी के उदययोग्य होने से अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 97 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । उनमें से अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, नरकत्रिक, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय और अयश इन बारह प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 85 प्रकृतियाँ होती हैं । तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, नीचगोत्र, उद्योत और प्रत्याख्यानावरणचतुष्क इन आठ प्रकृतियों को कम करने से 77 प्रकृतियाँ प्रमत्त गुणस्थानक में होती हैं । स्त्यानर्द्धित्रिक-इन तीन प्रकृतियों के सिवाय अप्रमत्त गुणस्थानक में 74 प्रकृतियाँ, सम्यक्त्वमोहनीय और अंतिम तीन संहनन-इन चार प्रकृतियों के बिना अपूर्वकरण गुणस्थानक में 70 प्रकृतियाँ और हास्यादिषट्क के बिना अनिवृत्ति गुणस्थानक में 64 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

22) क्रोध–यहाँ नौ गुणस्थानक होते हैं । मान-4, माया-4, लोभ-4 और जिननाम इन तेरह प्रकृतियों के बिना सामान्य से 109, सम्यक्त्व, मिश्र और आहारकद्विक-इन 4 प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 105, सूक्ष्मत्रिक, आतप, मिथ्यात्व और नरकानुपूर्वी-इन छह प्रकृतियों के बिना सास्वादन में 99 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । अनन्तानुबन्धी क्रोध, स्थावर, जातिचतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक-इन नौ प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 91 प्रकृतियाँ, उनमें से मिश्रमोहनीय को कम करने और सम्यक्त्वमोहनीय तथा आनुपूर्वीचतुष्क को मिलाने पर अविरत गुणस्थानक में 95 प्रकृतियाँ, उनमें से अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, आनुपूर्वीचतुष्क, देवगति, देवायु, नरकगति, नरकायु, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय और अयश इन चौदह प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 81 प्रकृतियाँ होती हैं । तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत, नीचगोत्र और प्रत्याख्यानावरण

क्रोध-इन पाँच प्रकृतियों के न्यून करने और आहारकद्विक के मिलाने पर प्रमत्त गुणस्थानक में 78 प्रकृतियाँ होती हैं। स्त्यानर्द्धित्रिक और आहारकद्विक-इस पाँच प्रकृतियों को कम करने पर अपमत्त गुणस्थानक में 73 प्रकृतियाँ, सम्यक्त्वमोहनीय और अन्तिम तीन संहनन इन चार प्रकृतियों के बिना अपूर्वकरण गुणस्थानक में 69 और हास्यादिषट्क बिना अनिवृत्ति गुणस्थानक में 63 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

23-24-25) मान, माया और लोभ-यहाँ उदयस्वामित्व पूर्ववत् समझना चाहिए। परन्तु मान और माया कषाय मार्गणा में नौ गुणस्थानक होते हैं। अपने सिवाय अन्य तीन कषायों की बारह प्रकृतियाँ भी कम करनी चाहिए। जैसे कि मान मार्गणा में अन्य तीन कषाय के अनन्तानुबन्धी आदि बारह भेद और जिननाम-इन तेरह प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 109 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं। इसी प्रकार अन्य कषायों के लिए भी समझना चाहिए। लोभ मार्गणा में दसवें गुणस्थानक में तीन वेदों को कम करने पर 60 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

26-27-28) मति, श्रुत और अवधि ज्ञान-यहाँ चौथे से लेकर बारहवें तक नौ गुणस्थानक होते हैं। सामान्य से 106 प्रकृतियाँ उदययोग्य हैं। आहारकद्विक के सिवाय अविरत गुणस्थानक में 104 और देशविरत आदि गुणस्थानकों में सामान्य उदयाधिकार के अनुसार क्रमशः 87, 81, 76, 72, 66, 60, 59 और 57 का उदयस्वामित्व समझना चाहिए।

29) मनः पर्यायज्ञान–इस मार्गणा में प्रमत्त गुणस्थानक से लेकर बारहवें गुणस्थानक तक सात गुणस्थानक होते हैं, इसलिए सामान्य से 81 और प्रमत्तादि गुणस्थानकों में अनुक्रम से 81, 76, 72, 66, 60, 59 और 57 प्रकृतियाँ उदय में समझनी चाहिए।

30) केवलज्ञान–इस मार्गणा में तेरहवाँ और चौदहवाँ ये दो गुणस्थानक होते हैं। उनमें सामान्यतः 42 और 12 प्रकृतियाँ अनुक्रम से समझना चाहिए।

31-32) मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान–यहाँ आदि के तीन गुणस्थानक समझना चाहिए। आहारकद्विक, जिननाम और सम्यक्त्वमोहनीय के बिना सामान्य से 118 और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117, सास्वादन गुणस्थानक में 111 और मिश्र गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

33) विभंग ज्ञान–यहाँ भी पूर्व कथनानुसार तीन गुणस्थानक होते हैं। आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व, स्थावरचतुष्क, जातिचतुष्क, आतप, मनुष्यानुपूर्वी और तिर्यंचानुपूर्वी इन पन्द्रह प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 107 प्रकृतियाँ उदययोग्य होती हैं। मनुष्य और तिर्यंच में विग्रहगति से विभंगज्ञान सहित नहीं उपजता है, ऋजुगति से उपजता है, अतएव यहाँ मनुष्यानुपूर्वी और तिर्यंचानुपूर्वी का निषेध किया है। मिथ्यात्व गुणस्थानक में मिश्रमोहनीय के सिवाय 106 प्रकृतियाँ, सास्वादन में मिथ्यात्व और नरकानुपूर्वी के बिना 104 प्रकृतियाँ, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और देवानुपूर्वी को कम करने और मिश्र मोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

34-35) सामायिक और छेदोपस्थापनीय संयम–इन दोनों चारित्रों में प्रमत्त से लेकर चार गुणस्थानक होते हैं। उनमें 81, 76, 72 और 66 प्रकृतियों का क्रमशः उदयस्वामित्व समझना चाहिए।

36) परिहारविशुद्धि–यहाँ छठा और सातवाँ ये दो गुणस्थानक होते हैं। उनमें पूर्वोक्त 81 प्रकृतियों में से आहारकद्विक, स्त्रीवेद, प्रथम संहनन के सिवाय शेष पाँच संहनन-इन आठ प्रकृतियों के बिना सामान्य से और प्रमत्त में 73 प्रकृतियाँ होती हैं। परिहारविशुद्धि चारित्र वाला चतुर्दश पूर्वधर नहीं होता है तथा स्त्री को परिहारविशुद्धि चारित्र नहीं होता है और वज्रऋषभनाराच संहनन वाले को ही परिहारविशुद्धि चारित्र होता है, इसीलिए यहाँ पूर्वोक्त आठ प्रकृतियों के उदय का निषेध किया है। स्त्यानर्द्धित्रिक के सिवाय अप्रमत्त गुणस्थानक में 70 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

37) सूक्ष्मसंपराय–यहाँ सिर्फ दसवाँ सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक ही होता है। सामान्यतः यहाँ 60 प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए।

38) यथाख्यात–यहाँ अन्त के 11, 12, 13 और 14 ये चार गुणस्थानक होते हैं। उनमें उपशान्त मोह में 59, ऋषभनाराच और नाराच इन दो संहनन के सिवाय क्षीणमोह के द्विचरम समय में 57, निद्राद्विक के बिना अन्तिम समय में 55, सयोगिकेवली गुणस्थानक में 42 और अयोगिकेवली गुणस्थानक में 12 प्रकृतियों का उदय होता है।

39) देशविरत–यहाँ पाँचवाँ एक ही गुणस्थानक होता है और उसमें सामान्य से 87 प्रकृतियों का उदय जानना चाहिए ।

40) अविरत–इस मार्गणा में प्रथम चार गुणस्थानक होते हैं । इसमें जिननाम और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियों के सिवाय सामान्य से 119, सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय इन दो प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व में 117, सूक्ष्मत्रिक, आतप, मिथ्यात्व और नरकानुपूर्वी-इन छह प्रकृतियों के बिना सास्वादन में 111, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्थावर, जातिचतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक-इन बारह प्रकृतियों को कम करने और मिश्र मोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ होती हैं, उनमें आनुपूर्वीचतुष्क और सम्यक्त्वमोहनीय इन पाँच प्रकृतियों को मिलाने और मिश्रमोहनीय को कम करने पर अविरत गुणस्थानक में 104 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

41) चक्षुदर्शन–यहाँ बारह गुणस्थानक होते हैं । जातित्रिक, स्थावरचतुष्क, जिननाम, आतप, आनुपूर्वीचतुष्क-इन तेरह प्रकृतियों के बिना सामान्य से 114, आहारकद्विक, सम्यक्त्व और मिश्र-इन चार प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 110, मिथ्यात्व के बिना सास्वादन में 109, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और चतुरिन्द्रिय जाति-इन पाँच प्रकृतियों के बिना और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 100 तथा अविरतसम्यग्दृष्टि में 104, देशविरत आदि गुणस्थानकों में सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए ।

42) अचक्षुदर्शन–इस मार्गणा में भी बारह गुणस्थानक होते हैं । इसमें जिननाम के बिना सामान्य से 121, आहारकद्विक, सम्यक्त्व और मिश्र-इन चार प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117 प्रकृतियाँ होती हैं । शेष गुणस्थानकों मे क्रमशः 111, 100, 104, 87, 81, 76, 72, 66, 60, 59 और 55 का उदयस्वामित्व समझना चाहिए ।

43) अवधिदर्शन–यहाँ चौथे से लेकर बारहवें गुणस्थानक तक नौ गुणस्थानक होते हैं । सिद्धान्त के मतानुसार विभंगज्ञानी को भी अवधिदर्शन कहा है । अतएव उसके मत में आदि के तीन गुणस्थानक भी होते हैं । परन्तु **कर्मग्रन्थ** के मत से विभंगज्ञानी को अवधिदर्शन नहीं होता है । अतएव

अवधिज्ञानी के समान सामान्य से 106 व अविरत गुणस्थानक में 104 प्रकृतियाँ होती हैं। आगे के गुणस्थानकों में सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए।

44) केवलदर्शन–यहाँ अन्तिम दो गुणस्थानक होते हैं और उनमें 42 तथा 12 प्रकृतियों का अनुक्रम से उदय समझना चाहिए।

45-46-47) कृष्ण, नील, कापोत लेश्या–यहाँ पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षा प्रथम से लेकर छह गुणस्थानक होते हैं। जिननाम के बिना सामान्य से 121 प्रकृतियाँ होती हैं, परन्तु प्रतिपद्यमान को अपेक्षा आदि के चार गुणस्थानक होते हैं। उस अपेक्षा से आहारकद्विक के बिना सामान्य से 119 प्रकृतियाँ होती हैं और मिथ्यात्वादि गुणस्थानकों में अनुक्रम से 117, 111, 100, 104, 87 और 81 प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए।

48) तेजोलेश्या–इसमें पहले से लेकर अप्रमत्त तक सात गुणस्थानक होते हैं। इसमें सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, नरकत्रिक, आतपनाम और जिननाम इन 11 प्रकृतियों के बिना सामान्य से 111, आहारकद्विक, सम्यक्त्व और मिश्र मोहनीय के सिवाय मिथ्यात्व गुणस्थानक में 107, मिथ्यात्व के बिना सास्वादन में 106, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्थावरनाम, एकेन्द्रिय और आनुपूर्वीत्रिक-इन नौ प्रकृतियों के सिवाय और मिश्रमोहनीय के मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 98, आनुपूर्वीत्रिक और सम्यक्त्वमोहनीय का प्रक्षेप करने और मिश्रमोहनीय को कम करने पर अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 101, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, आनुपूर्वीत्रिक, वैक्रियद्विक, देवगति, देवायु, दुर्भगनाम, अनादेय और अयश इन 14 प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 87, प्रमत्त गुणस्थानक में 81 और अप्रमत्त में 76 प्रकृतियाँ होती हैं।

49) पद्मलेश्या–इसमें सात गुणस्थानक होते हैं। इसमें स्थावरचतुष्क, जातिचतुष्क, नरकत्रिक, जिननाम और आतप इन तेरह प्रकृतियों के बिना सामान्य से 109 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक के देवों के पद्मलेश्या होती है और वे मरकर एकेन्द्रिय में नहीं जाते हैं, तथा नरक में पहली तीन लेश्याएँ होती हैं और जिननाम का उदय शुक्ललेश्या वाले को ही होता है। अतएव स्थावरचतुष्क आदि तेरह प्रकृतियों का विच्छेद कहा है। आहारकद्विक,

सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय-इन चार प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 105, सास्वादन में मिथ्यात्व के बिना 104, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक इन सात प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर 98 प्रकृतियाँ मिश्र गुणस्थानक में होती हैं। उनमें से मिश्रमोहनीय को कम करके और आनुपूर्वीद्विक तथा सम्यक्त्वमोहनीय को मिलाने से 100 प्रकृतियाँ अविरत गुणस्थानक में होती हैं। उनमें से अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, आनुपूर्वीत्रिक, देवगति, देवायु, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय और अयश-इन चौदह प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 87, प्रमत्त में 81 और अप्रमत्त में 76 प्रकृतियाँ होती हैं।

50) शुक्ललेश्या–इसमें तेरह गुणस्थानक हैं। स्थावरचतुष्क, जातिचतुष्क, नरकत्रिक और आतप नाम-इन 12 प्रकृतियों के बिना सामान्य से 110 प्रकृतियाँ होती हैं। आहारकद्विक, सम्यक्त्व, मिश्र और जिननाम इन पाँच प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व में 105 प्रकृतियाँ होती हैं। मिथ्यात्व के बिना सास्वादन में 104, उनमें से अनन्तानुबन्धीचतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक को कम करके मिश्रमोहनीय को मिलाने से मिश्र गुणस्थानक में 98, अविरत गुणस्थानक में 100 और देशविरति में 87 प्रकृतियाँ होती हैं। आगे के गुणस्थानकों में सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए।

51) भव्य–यहाँ चौदह गुणस्थानक होते है और उनमें सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए।

52) अभव्य–इसमें सिर्फ पहला गुणस्थानक होता है। सम्यक्त्व, मिश्र, जिननाम और आहारकद्विक-इन पाँच प्रकृतियों के बिना सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117 प्रकृतियाँ होती हैं।

53) उपशम सम्यक्त्व–इस मार्गणा में चौथे से लेकर ग्यारहवें तक आठ गुणस्थानक होते हैं। स्थावरचतुष्क, जातिचतुष्क, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्वमोहनीय, जिननाम, आहारकद्विक, आतपनाम और आनुपूर्वीचतुष्क-इन तेईस प्रकृतियों के बिना सामान्य से और अविरत गुणस्थानक में 99 प्रकृतियाँ होती हैं। अन्य आचार्य के मत से उपशम सम्यग्दृष्टि आयु पूर्ण होने से मरकर अनुत्तर देवलोक तक उत्पन्न होता है, तो

उस समय उसे अविरत गुणस्थानक में देवानुपूर्वी का उदय होता है, इस अपेक्षा सामान्य से और अविरत गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ होती हैं । अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकायु, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय और अयश-इन 14 प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 85 या 86 प्रकृतियाँ होती हैं । तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, नीच गोत्र, उद्योत और प्रत्याख्यानावरणचतुष्क इन आठ प्रकृतियों के बिना प्रमत्त गुणस्थानक में 78, स्त्यानर्द्धित्रिक के बिना अप्रमत्त गुणस्थानक में 75 और अन्तिम तीन संहनन के बिना अपूर्वकरण में 72 प्रकृतियाँ होती हैं और उसके बाद आगे के गुणस्थानकों में अनुक्रम से 66, 60, 59 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं ।

54) क्षायिक सम्यक्त्व–यहाँ चौथे से लेकर चौदहवें तक ग्यारह् गुणस्थानक होते हैं । इसमें जातिचतुष्क, स्थावरचतुष्क, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, आतप, सम्यक्त्व, मिश्र, मिथ्यात्व इन 16 प्रकृतियों के बिना सामान्य से 101, आहारकद्विक और जिननाम इन तीन प्रकृतियों के बिना अविरत गुणस्थानक में 98, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, वैक्रियाष्टक, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचत्रिक, दुर्भग, अनादेय, अयश और उद्योत-इन 20 प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 77 प्रकृतियाँ होती हैं । प्रत्याख्यानावरणचतुष्क व नीच गोत्र को कम करके आहारकद्विक के मिलाने पर प्रमत्त गुणस्थानक में 75 प्रकृतियाँ होती हैं । स्त्यानर्द्धित्रिक, आहारकद्विक-इन पाँच प्रकृतियों के बिना अप्रमत्त गुणस्थानक में 70, अपूर्वकरण में अन्तिम दो संहनन कम करने से 72 तथा आगे गुणस्थानकों में उदयस्वामित्व के समान समझना चाहिए ।

55) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व–इसमें चौथे से लेकर सातवें तक चार गुणस्थानक होते हैं । मिथ्यात्व, मिश्र, जिननाम, जातिचतुष्क, स्थावरचतुष्क, आतप और अनन्तानुबन्धीचतुष्क इन सोलह प्रकृतियों के बिना सामान्य से 106, आहारकद्विक के बिना अविरत गुणस्थानक में 104, देशविरत गुणस्थानक में 87, प्रमत्त में 81 और अप्रमत्त में 76 प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए ।

56) मिश्र सम्यक्त्व–इसमें एक तीसरा मिश्र गुणस्थानक होता है और उसमें 100 प्रकृतियों का उदय होता है ।

57) सास्वादन–यहाँ सिर्फ दूसरा सास्वादन गुणस्थानक होता है और उसमें 111 प्रकृतियों का उदय समझना चाहिए ।

58) मिथ्यात्व–इसमें प्रथम गुणस्थानक होता है और उसमें आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्व और मिश्र इन पाँच प्रकृतियों के बिना 117 प्रकृतियों का उदय होता है ।

59) संज्ञी–इसमें चौदह गुणस्थानक होते हैं । द्रव्यमन के सम्बन्ध से केवलज्ञानी को संज्ञी कहा है, अतःयहाँ चौदह गुणस्थानक होते हैं । परन्तु यदि मतिज्ञानावरण के क्षयोपशमजन्य मनन-परिणामरूप भावमन के सम्बन्ध से संज्ञी कहें तो इस मार्गणा में बारह गुणस्थानक होते हैं । इसमें स्थावर, सूक्ष्म, साधारण, आतप और जातिचतुष्क-इन आठ प्रकृतियों के बिना सामान्य से 114 प्रकृतियाँ उदय में होती हैं । यदि भावमन के सम्बन्ध से संज्ञी कहें तो संज्ञी मार्गणा में जिननाम का उदय न होने से उसे कम करने पर 113 प्रकृतियाँ होती हैं । आहारकद्विक, सम्यक्त्व और मिश्र-इन चार प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व में 109, अपर्याप्त नाम, मिथ्यात्व, नरकानुपूर्वी-इन तीन प्रकृतियों के बिना सास्वादन में 106 प्रकृतियाँ होती हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्क और आनुपूर्वीत्रिक-इन सात प्रकृतियों के सिवाय और मिश्रमोहनीय के मिलने पर मिश्र गुणस्थानक में 100 प्रकृतियाँ होती हैं और अविरत आदि आगे के गुणस्थानकों में सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए ।

60) असंज्ञी–इसमें आदि के दो गुणस्थानक होते हैं । वैक्रियाष्टक, जिननाम, आहारकद्विक, सम्यक्त्व, मिश्रमोहनीय, उच्चगोत्र, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन सोलह प्रकृतियों के बिना सामान्य से 106 प्रकृतियाँ होती हैं । उसमें से सूक्ष्मत्रिक, आतप, उद्योत, मनुष्यत्रिक, मिथ्यात्व, पराघात, उच्छ्वास, सुस्वर, दुःस्वर, शुभ विहायोगति और अशुभ विहायोगति-इन पन्द्रह प्रकृतियों के बिना सास्वादन में 91 प्रकृतियाँ होती हैं । सप्तति में उदयस्थानक में असंज्ञी को छह संहनन और छह संस्थान के भांगे दिये हैं, इसलिए उसे छह संहनन और छह संस्थान तथा सुभग, आदेय और शुभ विहायोगति का भी उदय होता है ।

61) आहारक–इसमें तेरह गुणस्थानक होते हैं । आनुपूर्वीचतुष्क के

बिना सामान्य से 118, आहारकद्विक, जिननाम, सम्यक्त्वमोहनीय और मिश्रमोहनीय इन पाँच प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व गुणस्थानक में 113, सूक्ष्मत्रिक, आतप और मिथ्यात्व इन पाँच प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन में 108, उनमें से अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्थावर नाम और जातिचतुष्क इन नौ प्रकृतियों को कम करने और मिश्रमोहनीय को मिलाने पर मिश्र गुणस्थानक में 100, उनमें से मिश्र मोहनीय को निकालकर बदले में सम्यक्त्वमोहनीय को जोड़ने से अविरत गुणस्थानक में 100, अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, वैक्रियद्विक, देवगति, देवायु, नरकगति, नरकायु, दुर्भग, अनादेय और अयश-इन तेरह प्रकृतियों के बिना देशविरत गुणस्थानक में 87 प्रकृतियाँ होती हैं। आगे के गुणस्थानकों में सामान्य उदयस्वामित्व समझना चाहिए।

62) अनाहारक–इस मार्गणा में 1, 2, 4, 13 और 14-ये पाँच गुणस्थानक होते हैं। औदारिकद्विक, वैक्रियद्विक, आहारकद्विक, संहननषट्क, संस्थानषटक्, विहायोगतिद्विक, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रत्येक, साधारण, सुस्वर, दुःस्वर, मिश्रमोहनीय और निद्रापंचक-इन 35 प्रकृतियों के बिना सामान्य से 87, जिननाम और सम्यक्त्वमोहनीय-इन दो प्रकृतियों के बिना मिथ्यात्व में 85, सूक्ष्म, अपर्याप्त, मिथ्यात्व और नरकत्रिक इन छह प्रकृतियों के सिवाय सास्वादन में 79 प्रकृतियाँ होती हैं।

मिश्र गुणस्थानक में कोई अनाहारक नहीं होता है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क, स्थावर और जातिचतुष्क-इन नौ प्रकृतियों के बिना और सम्यक्त्वमोहनीय तथा नरकत्रिक इन चार प्रकृतियों को मिलाने पर अविरत गुणस्थानक में 73 प्रकृतियाँ होती हैं। वर्णचतुष्क, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, जिननाम, त्रसत्रिक, सुभग, आदेय, यश, मनुष्यायु, वेदनीयद्विक और उच्चगोत्र-ये पच्चीस प्रकृतियाँ तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थानक में केवलिसमुद्घात करने पर तीसरे, चौथे और पाँचवें समय में उदय होती हैं। त्रसत्रिक, मनुष्यगति, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, जिननाम, साता अथवा असाता में से कोई एक वेदनीय, सुभग, आदेय, यश और पंचेन्द्रिय जाति-ये बारह प्रकृतियाँ चौदहवें गुणस्थानक में उदय होती हैं। यहाँ सर्वत्र उदय में उत्तरवैक्रिय की विवक्षा नहीं की है। सिद्धान्त में पृथ्वी, अप् और वनस्पति को सास्वादन गुणस्थानक नहीं बताया

है, सास्वादन गुणस्थानक वाले को मतिश्रुतज्ञानी कहा है । विभंगज्ञानी को अवधिदर्शन कहा है और वैक्रियमिश्र तथा आहारकमिश्र में औदारिकमिश्र कहा है, परन्तु वह कर्मग्रन्थ में विवक्षित नहीं है ।

उदीरणास्वामित्व

उदय-समय से लेकर एक आवलिका तक के काल को उदयावलिका कहते हैं । उदयावलिका में प्रविष्ट कर्मपुद्गल को कोई भी करण लागू नहीं पड़ता है । उदयावलिका के बाहर रहे हुए कर्मपुद्गल को उदयावलिका के कर्मपुद्गल के साथ मिलाकर भोगने को उदीरणा कहते है । जिस जाति के कर्मों का उदय हो, उसी जाति के कर्मों की उदीरणा होती है । इसलिए सामान्य रीति से जिस मार्गणा में जिस गुणस्थानक में जितनी कर्मप्रकृतियों का उदय होता है, उस मार्गणा में उस गुणस्थानक में उतनी प्रकृतियों की उदीरणा भी होती है, परन्तु इतना विशेष है कि जिस प्रकृति को भोगते हुए उसकी सत्ता में मात्र एक आवलिका काल में भोगने योग्य कर्मपुद्गल शेष रहें, तब उसकी उदीरणा नहीं होती है, अर्थात् उदयावलिका में प्रविष्ट कर्म उदीरणायोग्य नहीं रहता तथा शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने के बाद जब तक इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण न हो, तब तक पाँच निद्राओं की उदीरणा नहीं होती, उदय रहता है । छठे गुणस्थानक से आगे मनुष्यायु, साता और असाता वेदनीय कर्म की तद्योग्य अध्यवसाय के अभाव में उदीरणा नहीं होती है, उदय ही होता है तथा चौदहवें गुणस्थानक में योग के अभाव में किसी भी प्रकृति की उदीरणा नहीं होती है, सिर्फ उदय ही होता है ।

सत्तास्वामित्व

उदय-उदीरणा-स्वामित्व के अनन्तर 62 उत्तर-मार्गणाओं में प्रकृतियों की सत्ता का कथन करते हैं । सत्ताधिकार में 148 प्रकृतियाँ विवक्षित हैं ।

नरकगति और देवगति–इन दोनों मार्गणाओं में एक दूसरे के देवायु और नरकायु के सिवाय 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है । क्योंकि नरकगति में देवायु की और देवगति में नरकायु की सत्ता नहीं होती है । मिथ्यात्व गुणस्थानक में देवगति में जिननाम की सत्ता नहीं होती है, परन्तु नरकगति में होती है, इसलिए देवगति में मिथ्यात्व गुणस्थानक में 146 और नरकगति में 147

प्रकृतियों की सत्ता होती है । दूसरे और तीसरे गुणस्थानक में जिननाम के सिवाय 146 प्रकृतियों की सत्ता होती है । अविरत गुणस्थानक में क्षायिक सम्यग्दृष्टि के अनन्तानुबन्धीचतुष्क, सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्वमोहनीय और दो आयु-इन नौ प्रकृतियों के बिना 139 प्रकृतियों की सत्ता होती है । औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के एक आयु के बिना 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है । क्योंकि नारकों के देवायु और देवों के नरकायु सत्ता में नहीं होती है । क्षायिक सम्यग्दृष्टि के तिर्यंचायु भी सत्ता में नहीं होती है ।

मनुष्यगति–यहाँ सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 148 प्रकृतियों की सत्ता होती है । दूसरे और तीसरे गुणस्थानक में जिननाम के सिवाय 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में क्षायिक सम्यग्दृष्टि (अचरमशरीरी) चारित्रमोह के उपशमक को तिर्यंचायु, नरकायु, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और दर्शनमोहनीयत्रिक-इन नौ प्रकृतियों के बिना 139 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं और चरमशरीरी चारित्रमोह के उपशमक उपशमसम्यग्दृष्टि को अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करने के बाद तीन आयु के सिवाय 141 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं । क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि भविष्य में क्षपकश्रेणी का प्रारम्भ करने वाले चरमशरीरी को नरकायु, तिर्यंचायु और देवायु-इन तीन प्रकृतियों के सिवाय 145 की सत्ता होती है और अनन्तानुबन्धीचतुष्क तथा दर्शनमोहनीयत्रिक इन सात प्रकृतियों का क्षय करने के बाद 138 प्रकृतियों की सत्ता होती है । भविष्य में उपशम श्रेणी के प्रारम्भक उपशमसम्यग्दृष्टि (अचरम शरीरी) को नरक और तिर्यंच आयु के सिवाय 146 प्रकृतियों की और अनन्तानुबन्धीचतुष्क की विसंयोजना करने के बाद 142 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

देशविरत, प्रमत्त और अप्रमत्त-इन तीन गुणस्थानकों में उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी का आश्रय लेने वाले के चौथे गुणस्थानक जैसी सत्ता होती है ।

अपूर्वकरण गुणस्थानक में चारित्रमोह के उपशमक उपशमसम्यग्दृष्टि के अनन्तानुबन्धीचतुष्क, तिर्यंचायु और नरकायु-इन छह प्रकृतियों के बिना 142 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं । चारित्रमोह के उपशमक क्षायिक सम्यग्दृष्टि के दर्शनसप्तक, नरकायु और तिर्यंचायु के बिना 139 प्रकृतियों की सत्ता होती है और क्षपक श्रेणी के पूर्व में कहे गये अनुसार सत्ता होती है ।

अनिवृत्त्यादि गुणस्थानक में दूसरे कर्मग्रन्थ में कहे गये सत्ताधिकार के समान यहाँ भी समझ लेना चाहिए ।

तिर्यंचगति–यहाँ सामान्य से और मिथ्यात्व, सास्वादन और मिश्र गुणस्थानक में जिननाम के सिवाय 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है । अविरत गुणस्थानक में क्षायिक सम्यग्दृष्टि को दर्शनसप्तक, नरकायु और मनुष्यायु के सिवाय 138 और उपशम सम्यग्दृष्टि तथा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को जिननाम के सिवाय 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

देशविरत गुणस्थानक में औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि के जिननाम के सिवाय 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है । क्षायिक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच असंख्यात वर्ष के आयुष्य वाला होता है और उसको देशविरत गुणस्थानक नहीं होता है ।

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय–इन चार मार्गणाओं (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति) में सामान्य से और मिथ्यात्व, सास्वादन गुणस्थानक में जिननाम, देवायु और नरकायु के सिवाय 145 प्रकृतियों की सत्ता होती है । परन्तु सास्वादन गुणस्थानक में आयु का बन्ध नहीं होने की अपेक्षा से मनुष्यायु के सिवाय 144 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

पंचेन्द्रिय–इस मार्गणा में मनुष्यगति के अनुसार सत्ता समझना चाहिए ।

पृथ्वी, अप् और वनस्पतिकाय–इन तीन मार्गणाओं में एकेन्द्रिय मार्गणा के समान सत्ता समझना चाहिए ।

तेजस्काय और वायुकाय–यहाँ सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में जिननाम, देव, मनुष्य और नरकायु-इन चार प्रकृतियों के बिना 144 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

त्रसकाय–यहाँ मनुष्यगति प्रमाण सत्ता समझना चाहिए ।

मनोयोग, वचनयोग और काययोग–इन तीन मार्गणाओं में मनुष्यगति मार्गणा की तरह तेरह गुणस्थानक तक सत्ता समझना चाहिए ।

तीन वेद, क्रोध, मान, माया–इनमें मनुष्यगतिमार्गणा की तरह नौ गुणस्थानक तक सत्ता समझना चाहिए ।

लोभ–यहाँ मनुष्यगति के समान दस गुणस्थानक तक सत्ता समझना चाहिए ।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान–इन तीन मार्गणाओं में मनुष्यगति मार्गणा के समान चौथे से लेकर बारहवें गुणस्थानक तक सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

मनःपर्यवज्ञान–यहाँ सामान्य से तिर्यंचायु और नरकायु के सिवाय 146 प्रकृतियों की सत्ता होती है और छठे गुणस्थानक से लेकर बारहवें गुणस्थानक तक मनुष्यगतिमार्गणा के समान सत्तास्वामित्व जानना चाहिए ।

केवलज्ञान–यहाँ मनुष्यगति के समान अन्तिम दो गुणस्थानकों में कहा गया सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान और विभंगज्ञान–इनमें सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में 148 और दूसरे, तीसरे गुणस्थानक में जिननाम के बिना 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

सामायिक और छेदोपस्थानीय–इन दो मार्गणाओं में सामान्य से 148 प्रकृतियों की सत्ता होती है और इनमें छठे गुणस्थानक से लेकर नौवें गुणस्थानक तक मनःपर्यवज्ञानमार्गणा के समान सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

परिहारविशुद्धि–इसमें छठे और सातवें गुणस्थानक में कहे गये अनुसार सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

सूक्ष्मसंपराय–इसमें सामान्य से तिर्यंचायु और नरकायु के सिवाय 146 प्रकृतियों की सत्ता होती है अथवा अनन्तानुबन्धीचतुष्क की विसंयोजना करनेवाले को अनन्तानुबन्धीचतुष्क, तिर्यंचायु और नरकायु इन छह प्रकृतियों के सिवाय 142 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

यथाख्यात–यहाँ ग्यारहवें से लेकर चौदहवें गुणस्थानक तक सत्तास्वामित्व मनुष्यगतिमार्गणा के समान समझना चाहिए ।

देशविरत–यहाँ सामान्य से 148 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं । इसमें एक पाँचवाँ गुणस्थानक ही होता है और उसमें मनुष्यगति के समान सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

अविरत–यहाँ पहले चौथे गुणस्थानक तक सत्तास्वामित्व मनुष्यगति मार्गणा के समान समझना चाहिए ।

चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन–इन दोनों मार्गणाओं में पहले से बारहवें गुणस्थानक तक सत्तास्वामित्व मनुष्यगति मार्गणा के समान समझना चाहिए ।

अवधिदर्शन–यहाँ अवधिज्ञानमार्गणा के अनुसार सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

केवलदर्शन–केवलज्ञानमार्गणा के सदृश्य सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्या–तीन मार्गणाओं में पहले से लेकर छठे गुणस्थानक तक मनुष्यगति के अनुसार सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

तेज और पद्मलेश्या–पहले से सातवें गुणस्थानक तक मनुष्यगति के समान सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

शुक्ललेश्या–पहले से लेकर तेरहवें गुणस्थानक तक मनुष्यगति के समान सत्ता समझना चाहिए ।

भव्य–मनुष्यगति के समान सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

अभव्य–सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में जिननाम, आहारक चतुष्क, सम्यकत्व और मिश्रमोहनीय इस सात प्रकृतियों के बिना 141 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

औपशमिक सम्यक्त्व–चौथे से ग्यारहवें गुणस्थानक तक मनुष्यगति दे समान सत्ता समझना चाहिए ।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व–इसमें चौथे से सातवें गुणस्थानक तक मनुष्यगति के समान सत्ता समझना चाहिए ।

क्षायिक सम्यक्त्व–यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्क और दर्सनमोहनीयत्रिक इन सात प्रकृतियों के बिना सामान्य से 141 प्रकृतियोंन की सत्ता होती है और चौथे स चौदहवें गुणस्थानक तक मनुष्यगति के समान सत्तास्वामित्व समझना चाहिए ।

सास्वादन–यहाँ सामान्य से और दूसरे गुणस्थानक में जिननाम के बिना 147 प्रकृतियाँ की सत्ता होती है ।

मिथ्यातव–यहाँ सामान्य से और प्रमिथ्यात्व गुणस्थानक में 148 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं ।

संज्ञी–पहले से लेकर तेरहवें गुणस्थानक तक मनुष्यगति के समान सत्तास्वामित्व जानना चाहिए । इसमें केवलज्ञान को द्रव्यमान के सम्बन्ध में संत्री कहा है । यदि भावमन की अपेक्षा रखी जाय तो संज्ञी मार्गणा में बारह गुणस्थानक होते हैं ।

असंज्ञी–यहाँ सामान्य से और मिथ्यात्व गुणस्थानक में जिननाम के सिवाय 147 प्रकृतियों की सत्ता होती है और सास्वादन गुणस्थानक में नरकायु के सिवाय 146 प्रकृतियों की सत्ता होती है, परन्तु यहाँ अपर्याप्तावस्था में देवायु और मनुष्यायु का बंध करने वाला कोई संभव नहीं है, इसलिए उस अपेक्षा से 144 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

आहारक–पहले से लेकर तेरहवें गुणस्थानक तक मनुष्यगति मार्गणा के समान सत्तास्वामित्व जानना चाहिए ।

अनाहारक–इस मार्गणा में पहला, दूसरा, चौथा, तेरहवाँ और चौदहवाँ ये पांच गुणस्थानक होते हैं और उसमें मनुष्यगति के समान सत्ता जानना चाहिए ।

इस प्रकार उदय, उदीरणा और सत्तास्वामित्व का विवेचन पूर्ण हुआ ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न, पू.आ. श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 243 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	40.	संस्मरण	50/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	41.	भव आलोचना	10/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	42.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	43.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	44.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
6.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	150/-	45.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
7.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	400/-	46.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
8.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	47.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
9.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	48.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-
10.	विविध-तपमाला	100/-	49.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	150/-
11.	विवेकी बनो	90/-	50.	नमस्कार मीमांसा	150/-
12.	प्रवचन-वर्षा	60/-	51.	परमेष्ठि-नमस्कार	180/-
13.	आओ श्रावक बनें !	25/-	52.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-
14.	व्यसन-मुक्ति	100/-	53.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-
15.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	54.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-
16.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	55.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-
17.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	56.	वैराग्य-वाणी	140/-
18.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	57.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	160/-
19.	समाधि मृत्यु	80/-	58.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-
20.	Pearls of Preaching	60/-	59.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
21.	New Message for a New Day	600/-	60.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
22.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	61.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
23.	अमृत रस का प्याला	300/-	62.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
24.	ध्यान साधना	40/-	63.	मन के जीते जीत है	80/-
25.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-	64.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-1	300/-
26.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-	65.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-2	300/-
27.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-	66.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-1	280/-
28.	प्रेरक-प्रवचन	80/-	67.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-2	300/-
29.	जीव विचार विवेचन	100/-	68.	इन्द्रिय पराजय शतक	150/-
30.	नवतत्त्व विवेचन	110/-	69.	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	160/-
31.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-	70.	वैराग्य-शतक	140/-
32.	लघु संग्रहणी	140/-	71.	आनन्दघन चौबीसी विवेचन	200/-
33.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-	72.	धर्म-बीज	140/-
34.	कर्मग्रन्थ (भाग-1)	160/-	73.	45 आगम परिचय	200/-
35.	दूसरा कर्मग्रन्थ	110/-	74.	चौथा कर्मग्रन्थ	140/-
36.	गणधर-संवाद	80/-	75.	पाँचवाँ कर्मग्रन्थ	160/-
37.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-	76.	नित्य देववंदन	निशुल्क
38.	मोक्ष मार्ग के कदम	120/-	77.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	170/-
39.	विविध देववंदन	100/-	78.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	160/-
			79.	तीसरा कर्मग्रन्थ	90/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 8484848451 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299